राष्ट्रीय कार्यशाला
हिन्दी में शैक्षिक ई–सामग्री का विकास

प्रस्तावना

वर्तमान सदी ज्ञान की सदी है। ज्ञान आधारित समाज के निर्माण में प्रौद्योगिकी की अहम् भूमिका है। सूचना तथा संचार प्रौद्योगिकी ने निःसंदेह इसे गति प्रदान की है। हमारे देश में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) सेवाओं का विकास तथा विस्तार हुआ है। इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की पहुँच जन–जन तक हो चुकी है। युवा वर्ग इसे अपनाने में अग्रणी है। हर हाथ में मोबाइल तथा स्मार्टफोन ने संचार को नया आयाम दे दिया है। फोन अब सिर्फ बात कर लेने तक सीमित नहीं है बल्कि इसका दायरा बढ़ चुका है। अब यह इंटरनेट, ईमेल, वीडियोकॉल, बैंकिंग तक का साधन बन गया है। वीडियो, ऐनिमेशन, ग्राफिक्स से लेकर ह्वाट्सऐप तथा ट्विटर तक आगे जा चुका है। भारत सरकार के डिजिटल इंडिया, तथा स्किल इंडिया कार्यक्रम राष्ट्र को एक नयी दिशा देने का काम कर रहे हैं।

शिक्षा का क्षेत्र भी इनसे अछूता नहीं है। पठन–पाठन, शिक्षण तथा प्रशिक्षण के लिए आज इलेक्ट्रॉनिक युक्तियों तथा सामग्रियों का प्रयोग हो रहा है। आने वाले दिनों में इनकी आवश्यकता तथा उपादेयता बढ़ने वाली है। आज की कक्षा नए जमाने के इन विविध साधनों से सुसज्जित होती जा रही है। शिक्षा में इंटरनेट की भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ रही है। दुनिया की किसी भी चीज के बारे में जानना हो तो उसे सर्च इंजन में चंद शब्दों के जरिए तुरंत खोजा जा सकता है। किसी भी शैक्षिक विषय पर सैकड़ों पृष्ठों की सामग्री तुरंत सामने आ जाती है।

ज्ञान पर आधारित समाज के निर्माण के लिए आवश्यक है कि साधनों के साथ–साथ संगत सामग्री भी भारतीय भाषा में उपलब्ध हो। ऐसे में हिन्दी की महत्ता और बढ़ जाती है क्योंकि यह देश की करीब आधी आबादी की भाषा है। इस विशाल हिन्दी जगत की आशाएं तथा आकांक्षाएं हिन्दी के जरिए ही पूर्ण हो सकती हैं। होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र के द्वारा शुरू की गई राष्ट्रीय कार्यशालाओं के मूल में यही भावना कार्य कर रही है। इस कार्यशाला का उद्देश्य हिन्दी में विज्ञान तथा गणित विषयों के लिए उच्चतर माध्यमिक स्तर (2) तक की कक्षाओं के लिए सहपाठ्यचर्यात्मक सामग्री का सृजन करना है।

होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र (TIFR) मुंबई, ने वर्ष 2008 में छात्रों तथा अध्यापकों के लिए एक स्वतंत्र ई–लर्निंग पोर्टल (http://ehindi-hbcse-tifr-res-in) शुरू किया। शैक्षिक ई–सामग्री के विकास के लिए होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र ने वर्ष 2008, 2010, 2012 एवं 2014 में विज्ञान परिषद प्रयाग के तत्वावधान में चार राष्ट्रीय कार्यशालाएं आयोजित कीं। इन कार्यशालाओं में देश के लब्धप्रतिष्ठित वैज्ञानिकों, शिक्षकों तथा विज्ञान लेखकों

को प्रतिभागी विशेषज्ञ के रूप में व्याख्यान हेतु आमंत्रित किया गया। इन विशेषज्ञों के व्याख्यान होमी भाभा केन्द्र की उपरोक्त वेबसाइट पर ई–व्याख्यान के रूप में अपलोड किए गए हैं। इसके साथ ही इन कार्यशालाओं के प्रतिभागी विशेषज्ञों द्वारा सौंपे गए निबन्धों को चार पुस्तकों के रूप में होमी भाभा केन्द्र द्वारा प्रकाशित किया जा चुका है। ये पुस्तकें पीडीएफ फाइल के रूप में उपरोक्त पोर्टल पर उपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त इस पोर्टल पर ई–बुक्स, ई–प्रस्तुतियां, ई–ग्लॉसरी, ई–डॉक्युमेंटरीज, ई–प्रश्नमाला तथा इंटरैक्टिव ई–प्रश्न मौजूद हैं। इस वेबसाइट पर होमी भाभा केन्द्र द्वारा तैयार स्कूली पाठ्यक्रम की विज्ञान की पुस्तकें तथा लोकोपयोगी विज्ञान की कई किताबें उपलब्ध हैं। ई–व्याख्यान में भौतिकी, रसायन, जीवविज्ञान, जैवप्रौद्योगिकी, नैनोविज्ञान तथा पर्यावरण विज्ञान जैसे विषयों पर रोचक व्याख्यान दिए गए हैं। इस तरह इन कार्यशालाओं से इलेक्ट्रॉनिक तथा मुद्रित, दोनों तरह की सामग्रियां तैयार किए जाने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावित कार्यशाला इसी क्रम में पांचवीं राष्ट्रीय कार्यशाला है। देश में विज्ञान विषयक पढ़ाई हिन्दी में सुनिश्चित कराने के प्रयासों के पीछे विज्ञान परिषद् की भी अग्रणी भूमिका रही है। इसलिए इस कार्यशाला का महत्व और भी बढ़ जाता है। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता होती है कि ऐसे कार्यक्रमों को आयोजित करने के लिए विज्ञान परिषद् सहर्ष आगे आता है तथा दायित्व निर्वहन करने के लिए हमेशा तैयार रहता है। होमी भाभा केन्द्र इस कार्यशाला के आयोजन करने के लिए विज्ञान परिषद् के प्रति कृतज्ञ है। प्रस्तुत पुस्तिका में संकलित सारांशों की श्रेष्ठता तथा शीर्षकों की विविधता इस बात का प्रमाण है कि अकादमिक सदस्यगण वैज्ञानिक विषयों में हिन्दी में शैक्षिक सामग्री के सृजन के प्रति कितने गंभीर हैं। मैं इस कार्यक्रम के सभी प्रतिभागियों के प्रति अतीव आभारी हूँ जिनके सहयोग से हम शैक्षिक सामग्री विकसित करने की दिशा में अग्रसर हैं। मैं सभी छात्र प्रतिभागियों का भी बहुत आभारी हूं जिन्होंने इस कार्यशाला में सक्रिय भाग लिया तथा अपना बहुमूल्य योगदान दिया।

– प्रो. कृष्ण कुमार मिश्र
कार्यशाला संयोजक
होमी भाभा विज्ञान शिक्षा केन्द्र
टाटा मूलभूत अनुसंधान संस्थान, मुंबई–400088

(1)

नमभूमि पारितंत्र

नवनीत कुमार गुप्ता
परियोजना अधिकारी (एडूसेट)
विज्ञान प्रसार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग
सी–24, कुतूब संस्थानिक क्षेत्र, नई दिल्ली –110016

हमारी पृथ्वी विशिष्ट एवं जीवनमय है। पृथ्वी पर विभिन्न प्रकार के पारितंत्र मिलकर इसे जीवंत और अनोखा ग्रह बनाते हैं। असल में **पारितंत्र** स्वयं में एक गतिशील एवं क्रियाशील इकाई है। उत्पादकता, अपघटन, ऊर्जाप्रवाह एवं पोषण चक्र जैसे विभिन्न घटक मिलकर पारितंत्र को संपूर्णता प्रदान करते हैं।

पारितंत्र की अवधारणा को भलीभांति समझने के लिए हम नमभूमि पारितंत्र को विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं। **नमभूमियां** प्रकृति का अनोखा और अनुपम रूप हैं। नमभूमि का अर्थ है नमी या दलदली क्षेत्र। नमभूमि की मिट्टी झील, नदी, विशाल तालाब के किनारे का हिस्सा होती है जहां भरपूर नमी पाई जाती है। नमभूमि में पानी एक अजैविक घटक है जिसमें कार्बनिक एवं अकार्बनिक तत्व तथा प्रचुर मृदा निक्षेप नमभूमि की तली में जमा होते हैं। सूर्य की ऊर्जा, तापमान का उतार–चढ़ाव, दिन की अवधि लंबाई तथा अन्य जलवायवीय परिस्थितियाँ समूची नमभूमि की क्रियाशीलता की दर को नियमित करती हैं।

नमभूमि में किनारों पर और तल में कुछ पादप वनस्पतियां, काई तथा प्लवक पाए जाते हैं। इस पारितंत्र में पाए जाने वाले प्राणिप्लवक एवं मछली व अन्य तलीय जीव उपभोक्ताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। कवक एवं जीवाणु अपघटकों के उदाहरण हैं जो विशेष रूप से तालाबों की तली में प्रचुरता से पाए जाते हैं। यह तंत्र किसी भी पारितंत्र की सभी प्रक्रियाओं को निष्पादित करते हैं अर्थात् स्वपोषियों द्वारा सूर्य की विकिरण ऊर्जा के उपभोग से अकार्बनिक तत्वों को कार्बनिक तत्वों में बदलना, विभिन्न स्तरों के परपोषितों द्वारा स्वपोषकों का भक्षण, मृत जीवों की सामग्रियों का अपघटन एवं खनिजीकरण कर स्वपोषकों के लिए मुक्त करने का चक्र चलता रहता है।

नमभूमि– अनोखा पारितंत्र

नमभूमि के कई लाभ हैं। नमभूमि जल को प्रदूषण से मुक्त बनाता है। असल में वह क्षेत्र नमभूमि कहलाता है जिसका सारा या थोड़ा भाग वर्ष भर जल से भरा रहता है। नमभूमि धरती की भू–सतह के लगभग 6 प्रतिशत भाग पर फैली हुई है। भारत की बात करें तो नमभूमियां हमारे देश के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 4.63 प्रतिशत क्षेत्रफल पर फैली हुई हैं यानी करीब 15,26,000 वर्ग किलोमीटर भूक्षेत्र नमभूमियों से आच्छादित हैं। नमभूमियों में झीलें, नाले, सोता, तालाब और प्रवाघ्ल क्षेत्र शामिल होते हैं। भारत में नमभूमि ठंडे और शुष्क इलाकों से लेकर मध्य भारत के कटिबंधी मानसूनी इलाकों और दक्षिण के नमी वाले इलाकों तक फैली हुई है।

नमभूमियां जैवविविधता को सुरक्षित रखती हैं। विभिन्न प्रकार की मछलियां और जंतुओं के प्रजनन के लिए भी ये उपयुक्त होती हैं। नमभूमियां समुद्री तूफान और आंधी के प्रभाव को सहन करने की क्षमता रखती हैं। समुद्री तटरेखा को स्थिर बनाए रखने में भी नमभूमियों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। ये समुद्र द्वारा होने वाले कटाव से भी तटबंद की रक्षा करती हैं। **नमभूमियों का कार्बन–चक्र में विशेष महत्व है**। इसके अलावा इनका आर्थिक महत्व भी है। नमभूमियां अपने आसपास बसी मानव बस्तियों के लिए जलावन, फल, वनस्पतियां, पौष्टिक चारा तथा जड़ी–बूटियों की स्रोत होती हैं। नमभूमि विविधता से परिपूर्ण पारिस्थितिकी–तंत्र की द्योतक हैं। नमभूमियों में बढ़ता पर्यटन अनेक स्थानों पर आर्थिक गतिविधियों का आधार बन गया है।

(2)

हमारा पर्यावरण और उसकी समस्यायें

डॉ. रोली श्रीवास्तव

एसोसिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग

सी.एम.पी. कालेज, इलाहाबाद (उ.प्र.)

पर्यावरण शब्द दो शब्दों– परि तथा आवरण से बना है। परि का अर्थ है परितरू अर्थात् चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है आच्छादन या पर्दा। यह हमारे चारों ओर फैले उस वातावरण का सूचक है जिसमें जैविक तथा अजैविक घटकों में भौतिक तथा रासायनिक घटक निहित है जबकि जैविक घटक में समस्त सजीव प्राणी, सूक्ष्म जीवाणु, वनस्पतियाँ, पशु तथा मनुष्य सम्मिलित हैं। पर्यावरण हमारे जीवन का आधार है। किन्तु जनसंख्या की तीव्र वृद्धि एवं प्राकृतिक संसाधनों के अन्धाधुन्ध दोहन से पर्यावरण संतुलन बिगड़ चुका है। इसके कारण विभिन्न प्रकार के प्रदूषण उत्पन्न हो रहे हैं। **प्रदूषण** का अर्थ है दूषित होना अर्थात् अपने मूलरूप को त्यागकर हानिकारक बन जाना। पर्यावरण प्रदूषण, पर्यावरण अशुद्ध होने तथा उसके ह्रास का सूचक है। इस स्थिति मंम पर्यावरण अपनी मूल स्थिति में नहीं रह पाता है।

खनन कार्य ऐसा प्रथम मानव कार्य है जिसने प्राकृतिक पर्यावरण को प्रदूषित करने का कार्य किया। पाषाण युग में मानव ने अपनी सुरक्षा तथा भोजन प्राप्त करने के प्रयास में प्राकृतिक तंत्र से छेड़–छाड़ आरम्भ कर दी थी– पत्थरों के हथियार निर्माण द्वारा– फिर जंगलों में लगी आग के प्रभाव को देखकर इस शक्ति का उपयोग जंगली जानवरों से अपनी सुरक्षा करने एवं अपने भोजन को स्वादिष्ट बनाने में करने लगा। यहीं से वायु प्रदूषण आरम्भ हुआ। बिना सोचे समझे प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करके पारिस्थितिकी तंत्र के संतुलन को बिगाड़ना ही **पर्यावरण प्रदूषण** का मूल कारण है। प्रकृतिजन्य प्रदूषण एवं मानवजन्य प्रदूषण पर्यावरण के अंग है। प्रकृतिजन्य प्रदूषण के अन्तर्गत वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं मृदा प्रदूषण आते हैं। जबकि मानवजन्य प्रदूषण के अन्तर्गत कृषि प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, तापीय प्रदूषण तथा औद्योगिक प्रदूषण आते हैं।

जनसंख्या वृद्धि के दुष्प्रभाव, औद्योगिक क्रान्ति, प्राकृतिक संसाधनों का दुरुपयोग, मानव के अदूरदर्शितापूर्ण व्यवहार से जल, वायु एवं भूमि का दोहन ही पर्यावरण को असंतुलित करते हैं। वृक्ष प्रदूषण निवारण में सहायक होते हैं। वृक्षों की पत्तियाँ प्रदूषक गैसों को शोषित कर लेती हैं और वायुमण्डल में विद्यमान प्रदूषणकारी सूक्ष्म कण वृक्षों की पत्तियों पर निक्षेपित हो जाते हैं। वृक्ष कार्बन डाईऑक्साइड को ग्रहण कर जीवनदायिनी ऑक्सीजन गैस उत्सर्जित करते हैं। किन्तु फसलों की सुरक्षा के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले कीटनाशी रसायन मृदा एवं चारे–दाने को विषाक्त करते हैं। **औद्योगीकरण** को आज विकास का पैमाना माना जाता है। इससे उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण के चलते लोग आज शुद्ध वायु, स्वच्छ जल, तथा निर्मल वातावरण को तरसने लगे हैं।

पर्यावरण में हो रहे असंतुलन से जलवायु परिवर्तन, भूमिक्षरण, ग्लोबल वार्मिंग ओजोन परत का क्षरण, अम्लवर्षा, विलुप्त होती जैव सम्पदा आदि भयावह संकट उत्पन्न हो रहे हैं। मौसम में परिवर्तन होने के कारण अत्यधिक वर्षा, बाढ़, भूकम्प, सूखा, चक्रवात, समुद्री तूफान जैसी भयावह आपदायें बढ़ती जा रही हैं। औद्योगिकीकरण, वनों की कटाई, जीवाश्म ईंधन के प्रयोग से ग्लोबल वार्मिंग की विश्वव्यापी समस्या बढ़ रही है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ग्लेशियर पिघल रहे हैं जिससे महासागरों के जलस्तर में वृद्धि होने से सागर तटीय क्षेत्रों के डूबने की आशंका है। इससे फसलों के उत्पादन में कमी आ जाएगी जिससे वैश्विक खाद्यसुरक्षा पर असर पड़ेगा।

ओजोन परत को धरती का रक्षा कवच कहा जाता है। यह सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को धरती पर आने से रोकती है। किन्तु ओजोन परत के क्षरण होने के कारण ग्लोबल वार्मिंग के कारण गर्मी बढ़ती जा रही हैं जो अनेक आपदाओं को जन्म दे रही हैं। 5 जून को हर साल **विश्व पर्यावरण दिवस** के रूप में मनाया जाता है। इसका उद्देश्य है लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना, जिससे लोग सचेत रहें तथा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करें।

(3)

ऐरोमैटिकता

डॉ. अर्चना पाण्डेय
एसोशिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग
सी.एम.पी. कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

ऐरोमैटिक शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द **ऐरोमा** से हुई है जिसका अर्थ होता है सुगन्ध। ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन अधिकतर सुगन्धित होते हैं परन्तु बहुत से यौगिक ऐसे भी है जिनमें सुगन्ध नहीं होती किन्तु रचना व रासायनिक गुणों के आधार पर इन्हें ऐरोमैटिक वर्ग में रखा गया है। इस वर्ग का **प्रथम यौगिक बेन्जीन है** जिसकी संरचना 1865 में केकुले ने दी। यह एक चक्रीय यौगिक है। इसके पूर्व खुली संरचना वाले यौगिक

ज्ञात थे। अतः इसका अणुसूत्र (C_6H_6) ज्ञात होने के बावजूद कार्बन, हाइड्रोजन व आपस में उनके बन्धों की स्थिति स्पष्ट नहीं हो पा रही थी। सन् 1872 में केकुले ने बेन्जीन की **गतिक संरचना** प्रस्तुत की जिसके अनुसार तीनों द्विबन्ध कार्बन परमाणुओं के बीच सतत दोलायमान रहते हैं। इसी प्रक्रिया को **'अनुनाद'** भी कहते है। आधुनिक विचारों के अनुसार बेन्जीन की संरचना को अनुनाद के सिद्धान्त, षट्भुज के सिद्धान्त तथा आण्विक कक्षक सिद्धान्त द्वारा समझाया जाता है। वे सभी यौगिक जिनमें बेन्जीन वलय होता है, **ऐरोमैटिक** यौगिक कहलाते हैं। इन्हें **बेन्जीनॉयड हाइड्रोकार्बन** भी कहते हैं। इसके अलावा ऐसे यौगिक जिनमें बेन्जीन वलय नहीं होता परन्तु वे ऐरोमैटिक गुण रखते है, उन्हें **नॉनबेन्जीनॉयड हाइड्रोकार्बन** कहते हैं।

ऐरोमैटिक होने के लिए यौगिक में कुछ गुणधर्म होने चाहिए। उदाहरण के लिए– यौगिक के अणुओं को समतलीय होना चाहिए, इसे चक्रीय होना चाहिए, पाई– इलेक्ट्रॉन विस्थापित होना चाहिए तथा इसे हकल के नियम का अनुपालन करना चाहिए। इस नियम के अनुसार ऐरोमैटिक होने के लिए इलेक्ट्रॉनों की संख्या $(4n+2)\pi$ के अनुसार होनी चाहिए। ये इलेक्ट्रॉन संयुग्मी होने चाहिए तथा n का मान 0, 1, 2, 3... होना चाहिए। ऐरोमैटिकता का गुण रखने वाले सभी यौगिक बहुत स्थायी होते हैं। ऐरोमैटिक यौगिकों के अलावा कई यौगिक **एन्टीऐरोमैटिक** होते हैं। इनमें इलेक्ट्रॉनों की संख्या $4n\pi$ होती है तथा ये ऐरोमैटिक यौगिकों की तरह स्थायी नहीं होते। कुछ यौगिक **नॉन ऐरोमैटिक** भी होते हैं। ये चक्रीय व संयुग्मी होने के साथ– साथ अनुनादी ऊर्जा भी रखते हैं परन्तु फिर भी बहुत क्रियाशील होते हैं।

(4)

विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण अधिगम प्रक्रिया द्वारा जीवों में विविधता का अध्ययन

डॉ. सुनील कुमार गौड़

शिक्षक प्रशिक्षक, पाठ्यचर्या विभाग

राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् उत्तराखण्ड

तपोवन रोड, देहरादून – 248008

विज्ञान प्रकृति के भौतिक सत्य के अन्वेषण की विधा है। यह ष्करके सीखनेष् का विषय है। यह समझने का विषय है। यहां रटने की चीज नहीं है। विज्ञान की प्रकृति ही ऐसी है कि इसे वैज्ञानिक पद्धति से ही सीखा जा सकता है। इसमें जिज्ञासा, खोजबीन, अवलोकन, वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं स्व–अनुभव के द्वारा नवीन ज्ञान का सृजन होता है। विज्ञान में ज्ञान का स्रोत हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ है। विज्ञान में प्रक्रिया (Process) के द्वारा उत्पाद (Product) प्राप्त होते हैं। प्रक्रिया के अन्तर्गत विज्ञान के विविध कौशल (अवलोकन, वर्गीकरण, अनुमान,

परिकल्पना, प्रयोग आदि) आते हैं। प्रक्रिया के द्वारा प्राप्त तथ्य, अवधारणा, नियम, सिद्धान्त आदि विज्ञान के उत्पाद हैं। नवीन ज्ञान का सृजन करने के लिए हमें प्रक्रिया पक्ष पर आधारित शिक्षण–अधिगम करना आवश्यक है। विज्ञान के प्रक्रिया पक्ष की प्रमुख गतिविधि **प्रयोग** (Experiment) है। **प्रयोग के बिना किया जाने वाला शिक्षण, विज्ञान का शिक्षण– अधिगम नहीं कहलाता**।

विज्ञान में शोध आधारित शिक्षण– अधिगम प्रक्रिया (Research&based teaching& learning process) का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। बच्चों में शोध की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। वे अवलोकन और खोजबीन करते हैं, उनमें जिज्ञासा होती हैं, अनुमान लगाते हैं तथा नियम बनाते हैं। विज्ञान के शिक्षण– अधिगम में बच्चों की इस प्रवृत्ति को केन्द्र में रखा जाना चाहिए। शोध–आधारित शिक्षण– अधिगम प्रक्रिया द्वारा विद्यार्थी अन्वेषक के रूप में कार्य करके नवीन ज्ञान की खोज भी करते हैं। यह प्रक्रिया ज्ञान को स्कूल के वाह्य जीवन से जोड़ती है, पढाघ्ई को रटन्त प्रणाली से मुक्त करती है, पाठ्यपुस्तकों पर आधारित न होकर विद्यार्थियों के स्वभाव के अनुकूल जिज्ञासा तथा खोजी प्रवृत्ति पर आधारित होती है, जिससे विद्यार्थियों के चहुँमुखी विकास में मदद मिलती है।

शोध आधारित शिक्षण– अधिगम प्रक्रिया द्वारा 'जैव विविधता' का अध्ययन सुगमता से किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत व्हिटेकर द्वारा प्रस्तावित ष्जीवों का पाँच जगत आधारित वर्गीकरणष् का आगमनात्मक (Inductivist) तथा अनुसंधान विधि द्वारा गतिविधि आधारित शिक्षण– अधिगम किया जाना समीचीन होगा। इस शिक्षण प्रक्रिया के द्वारा विद्यार्थी मोनेरा, प्रोटिस्टा, फंजाई, प्लांटी और एनीमेलिया जगत की विशेषताओं का प्रतिपादन स्वयं कर सकेंगे। प्लांटी और एनीमेलिया को उनकी क्रमिक शारीरिक जटिलताओं के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। पौधों को पाँच वर्गों– शैवाल, ब्रायोफाइटा, टेरिडोफाघ्इटा, जिम्नोस्पर्म तथा ऐंजियोस्पर्म में बाँटा गया है। जन्तुओं को दस फाइलम दृ पोरीफेरा, सीलेंटरेटा, प्लेटीहेल्मिन्थीज, निमेटोडा, एनीलिडा, आर्थोपोडा, मोलस्का, इकाइनोडर्मेटा, प्रोटोकार्डेटा, कार्डेटा में विभक्त किया गया है। इससे विद्यार्थियों में जीवों के वर्गीकरण के आधार की भी समझ बनेगी और वे 'जैव विविधता' की अवधारणा को आत्मसात् कर सकेंगे। इस प्रकार से किया गया विज्ञान का शिक्षण– अधिगम नवाचार तथा गुणवत्तायुक्त होगा।

(5)

संश्लिष्ट रेशे

डॉ. सुनन्दा दास

एसोशिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग, सी.एम.पी. डिग्री कालेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

संश्लिष्ट रेशे वे हैं जिन्हें प्राकृतिक रूप (जीवों और वनस्पतियों) से नहीं बल्कि कृत्रिम रूप से निर्मित किया जाता है। रेशे जो प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त किये जाते हैं उन्हें **प्राकृतिक रेशे** कहा जाता है, जैसे– कपास,

रेशम, ऊन आदि। मानवनिर्मित या संश्लिष्ट रेशों के उदाघ्हरण हैं रेयॉन, नायलॉन, एक्रिलिक आदि।

संश्लिष्ट रेशों में रासायनिक यौगिकों की छोटी इकाइयां होती हैं जिन्हें 'मोनोमर' कहते हैं। बहुलीकरण द्वारा ये एक श्रृंखलाबद्ध रूप में संयोजित रहती हैं। इस प्रकार की श्रृंखला के गठन को **पॉलीमर** या बहुलक कहा जाता है। पॉलीमर एक ग्रीक शब्द है, जिसमें 'पॉली' का अर्थ 'कई' और 'मर' का तात्पर्य 'इकाइयों' से है। इस प्रकार **बहुलक कई इकाइयों से बना रासायनिक यौगिक है**। इसमें दो समीपवर्ती कार्बन परमाणुओं के मध्य बन्ध बनता है। भिन्न रासायनिक यौगिकों द्वारा भिन्न प्रकार के संश्लेषित रेशों का उत्पादन होता है। संश्लेषित रेशे वैज्ञानिकों द्वारा प्राकृतिक रूप से प्राप्त रेशों में सुधार लाने हेतु विस्तृत अनुसंधान के परिणाम हैं।

सामान्यतः संश्लिष्ट रेशों का उत्पादन, रेशा बनाने की सामग्री को वायु और जल में कताई यंत्र के माध यम से बाहर निकाला जाता है। रेशा और वस्त्र प्रौद्योगिकी के हर क्षेत्र में संश्लिष्ट रेशों का प्राकृतिक रूप से पाए गये रेशों की तुलना में अधिक इस्तेमाल किया जाता है। संश्लिष्ट रेशे विकसित करने के पहले कृत्रिम रूप से निर्मित रेशों को पेट्रोकेमिकल्स से प्राप्त पॉलीमर से बनाया गया था। अतः इन रेशों को **कृत्रिम या सिंथेटिक फाइबर** कहा जाने लगा।

कृत्रिम रेशे निर्माण करने का विचार सबसे पहले अंग्रेज वैज्ञानिक 'राबर्ट हुक' के दिमाग में उठा था, जिसका उल्लेख 1664 ई. में प्रकाशित **'माइक्रोग्राफिया'** नामक पुस्तक में पाया गया है। **'जोसफ स्वॉन'** ने 1880 के दशक के शुरूआती दौर में पहली बार पेड़ की छाल से लिए तरल सेल्यूलोज से रेशे तैयार किए। जल्द ही स्वॉन के रेशों का वस्त्र निर्माण में उपयोग होने से कपड़ा उद्योग में एक क्रांतिकारी बदलाव हुआ।

अगला कदम हिलैरे डे शारडोनेट द्वारा पहली बार कृत्रिम रेशम का आविष्कार हुआ जिसे शारडोनेट रेशम कहा गया। दुर्भाग्य से श्शारडेनेट मेटीरियलश कपड़ा अत्यन्त ज्वलनशील था क्यूंकि इसमें नाइट्रोसेल्यूलोज का उपयोग किया गया था। पहली सफल प्रक्रिया चार्ल्स फ्रेडरिक क्रास और उनके सहयोगियों एडवर्ड जॉन बेवन और क्लेटन बीडल द्वारा 1894 ई. में एक प्रकार का रेशा विकसित करके की गयी जिसका नाम **'विस्कोस'** दिया गया। पहली बार वाणिज्यिक रूप से विस्कोस रेयान 1905 ई. में ब्रिटेन की कंपनी कोर्टोल्ड फाइबर्स ने बनाया। श्रेयानश नाम 1924ई. में अपनाया गया था।

नायलॉन पहला संश्लिष्ट रेशा था जिसे 1930 के दशक में वालेस कैरोथर्स द्वारा एक रासायनिक फर्म श्ड्यूपॉन्टश में विकसित किया था। यह जल्द ही रेशम के स्थापन्न के रूप में लोकप्रिय बना। पहला पॉलिएस्टर रेशा जॉन रेक्स विनफील्ड और जेम्स टेनेंट डिक्सन द्वारा 1941 ई. में प्रचलित किया गया। उन्होंने पॉलिएस्टर सूत का पेटेंट कराया जिसे टेरीलीन या डेक्रोन के नाम से भी जाना जाता है।

सन् 2014 में दुनिया में संश्लिष्ट रेशों का कुल उत्पादन 55.2 लाख टन था। संश्लिष्ट रेशे जैसे नायलॉन, पॉलिएस्टर, एक्रिलिक और पॉलिओलीफीन संभावित महत्वपूर्ण वाणिज्यिक उत्पादों के रूप में मूल्यांकित किए गये हैं। संश्लिष्ट रेशों के निर्माण के कई तरीके हैं लेकिन सबसे आम **मेल्ट–स्पिनिंग प्रक्रिया** है। कुछ मानव निर्मित रेशों का वस्त्रोद्योग के अलावा अनेक अन्य औद्योगिक उपयोग भी हैं, जैसे– बबलफिल, सेल्यूलोस ऐसीटेट, टेनास्को और फार्टिसन, विनियान, सारन, ऑर्लान आदि।

(6)
कोशिका एवं कोशिका विभाजन

डॉ. उमेश कुमार शुक्ल
पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट
सतना (मध्य प्रदेश)

कोशिका किसी जीव की सबसे छोटी संघनात्मक इकाई है। यह अंग्रेजी शब्द सेल (ब्मसस) लैटिन भाषा के शेलुला से लिया गया है जिसका अर्थ एक छोटा कमरा है। जो सजीव एक ही कोशिका से बने हैं, उन्हें **एककोशिकीय** जीव कहते हैं। मनुष्य का शरीर अनेक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है, इसलिए यह **बहुकोशिकीय** प्राणी है। कोशिका की खोज राबर्ट हुक ने 1665 ई. में की। सन् 1939ई. में 'लाइडेन तथा श्वान ने **कोशिका का सिद्धान्त** प्रस्तुत किया जिसके अनुसार सभी सजीवों का शरीर एक या एक से अधिक कोशिकाओं से मिलकर बना होता है तथा सभी कोशिकाओं की उत्पत्ति पहले से उपस्थित किसी कोशिका से ही होती है।

कोशिकाएँ सजीव होती हैं तथा वे सभी कार्य करती हैं जिन्हें सजीव प्राणी करते हैं। इनका आकार अतिसूक्ष्म तथा आकृति गोलाकार, अंडाकार, स्तंभाकार रोमयुक्त कशाभयुक्त, बहुभुजीय आदि होती है। ये जेली जैसी एक वस्तु द्वारा घिरी होती हैं। इस आवरण को कोशिकावरण (Cell membrane) या कोशिका–झिल्ली कहते हैं। यह झिल्ली वरणात्मक रूप से पारगम्य (selectively permeable) होती है। इसका अर्थ है कि यह झिल्ली किसी पदार्थ अणु या ऑयन को मुक्त रूप से पार होने देती है, सीमित मात्रा में पार होने देती है या बिल्कुल रोक देती है। इसे कभी–कभी **जीवद्रव्य कला** भी कहा जाता है।

कोशिकाओं को मुख्यतया दो कोटियों में विभक्त किया जाता है– **प्रोकैरियोटिक कोशिका** (prokaryotic Cell) तथा **यूकैरियोटिक कोशिका** (eukaryotic Cell)। प्रोकैरियोटिक कोशिकाएं प्रायरू स्वतंत्र होती हैं, यूकैरियोटिक कोशिकाएं बहुकोशिकीय प्राणियों में पायी जाती हैं। प्रोकैरियोटिक कोशिका में कोई स्पष्ट केन्द्रक नहीं होता है। केन्द्रकीय पदार्थ कोशिका द्रव में बिखरे होते हैं। इस प्रकार की कोशिका जीवाणु तथा नीलहरित शैवाल में पायी जाती हैं। सभी उच्च श्रेणी के पौधों और जन्तुओं में यूकैरियोटिक प्रकार की कोशिका पाई जाती है। सभी यूकैरियोटिक कोशिकाओं में संगठित केन्द्रक पाया जाता है जो एक आवरण से ढका होता है।

(7)

रासायनिक आबंधन एवं संकरण

डॉ. ज्योति पाण्डेय

असिस्टेंट प्रोफेसर, ऐप्लाइड केमिस्ट्री विभाग

बाबा साहब अम्बेदकर विश्वविद्यालय

रायबरेली रोड, लखनऊ–260025

रसायन विज्ञान, विज्ञान की वह विधा है जिसके अन्तर्गत पदार्थों के गुणधर्म, संघटन, संरचना तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन किया जाता है। इसका अध्ययन हम प्रकृति के रहस्यों को जानने एवं उपलब्ध पदार्थों को अधिक उपयोगी बनाने के लिए करते हैं। रसायन विज्ञान की भाषा में ब्रह्माण्ड की निर्माण श्रृंखला को निम्न प्रकार से दर्शाया जा सकता हैरू

परमाणु (तत्व) → अणु (यौगिक) → द्रव्य → ब्रह्माण्ड

द्रव्य में परमाणुओं को आपस में बंधने के लिए **जो कारक उत्तरदायी होते हैं वे रासायनिक आबंध हैं**, तथा यह प्रक्रिया रासायनिक आबंधन कहलाती है। प्रत्येक परमाणु अपना अष्टक पूर्ण करने के लिए आबंध बनाता है जिससे वह स्थायित्व प्राप्त कर सके। परमाणु अपना अष्टक दो प्रकार से पूर्ण कर सकता हैः

1. इलेक्ट्रॉन त्याग करके अथवा ग्रहण करके – **विद्युत संयोजी** आबंध बनते हैं।
2. इलेक्ट्रॉन साझा करके– **सह संयोजी बन्ध अथवा उप–सहसंयोजी** आबंध बनते हैं।

सहसंयोजी आबन्ध की व्याख्या करने के लिए संकरण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया। संकरण के सिद्धान्त की संकल्पना पॉलिंग और स्लेटर (Pauling and Slater) ने अणुओं की ज्यामिति को स्पष्ट करने के लिए दी। इनके अनुसार, "वह प्रक्रिया जिसमें समान अथवा लगभग समान ऊर्जा के भिन्न परमाण्विक कक्षक (जवउपब वतइपजंस) आपस में संयोग करते हैं तथा ऊर्जा के पुनर्वितरण के द्वारा समान ऊर्जा तथा समान आकृति के संकरित कक्ष बनते है जिनकी संख्या उतनी ही होती है जितने कक्षक मिलाये गये थे, **संकरण** (Hybridization) कहलाती है। संकरण के फलस्वरूप बने कक्षक **संकरित कक्षक** (Hybrid orbital) कहलाते है।

संकरण कई प्रकार के होते हैं, उदाहिरणतः sp, sp^2, sp^3, sp^3d, sp^3d^2, sp^3d^3। इनके आधार पर अणुओं की ज्यामिति का सही–सही अनुमान लगाया जा सकता है जो कि संयोजी बन्ध सिद्धान्त द्वारा सम्भव नहीं था।

(8)

तुल्यांकी भारः संकल्पना एवं उपयोगिता

डॉ. अमर श्रीवास्तव

एसोशिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग, डी. ए. वी. कॉलेज

कानपुर–208001 (उत्तर प्रदेश)

रसायन विज्ञान में श्तुल्यांकी भारश की संकल्पना एक बहुत उपयोगी एवं रोचक संकल्पना है। इसका उपयोग आंकिक गणनाओं में बहुतायत से होता है। उपयोगी एवं रोचक होने के बावजूद यह विषय विद्यार्थियों के लिए कठिन एवं उलझन में डालने वाला माना जाता है, यद्यपि यह अत्यन्त सरल है। इसके कारण उन्हें गणनाओं में कठिनाई होती हैं।

रासायनिक अभिक्रियाएँ पदार्थों के एक निश्चित द्रव्यमान के अनुसार सम्पन्न होती हैं। किसी पदार्थ का निश्चित द्रव्यमान दूसरे पदार्थ के निश्चित द्रव्यमान के साथ ही क्रिया करता है। उदाहरण के लिए, हाइड्रोजन की 1g मात्रा ऑक्सीजन के 8g या क्लोरीन के 35.5g के साथ क्रिया करती है। दूसरे शब्दों में किसी पदार्थ की एक निश्चित मात्रा दूसरे पदार्थ की एक निश्चित मात्रा के समतुल्य है। इसी समतुल्यता (equivalence) को **पदार्थ का तुल्यांकी भार कहते हैं**। अतः किसी पदार्थ का तुल्यांकी भार उस पदार्थ का वह द्रव्यमान है जो हाइड्रोजन के 1g या ऑक्सीजन के 8g या क्लोरीन के 35.5g के साथ क्रिया करता है या विस्थापित करता है। पदार्थ के तुल्यांकी भार को ग्राम में व्यक्त करने पर इसे **ग्राम तुल्यांकी भार** कहा जाता है।

तुल्यांकी भार की वर्तमान संकल्पना रिक्टर, वेंजल, जान डाल्टन, कैनिजारो, जोसेफ प्राउस्ट, ड्यूमा आदि अनेक वैज्ञानिकों के प्रयासों का प्रतिफल है। रिक्टर ने सर्वप्रथम **स्टाईकोमीटरी** (stoichiometry) शब्द का प्रतिपादन किया तथा उन्होंने अनेक तत्वों के तुल्यांकी भारों को ज्ञात किया। प्रारम्भ में तुल्यांकी भारों की गणना प्रायोगिक विधियों द्वारा की जाती थी जिनमें हाइड्रोजन विस्थापन विधि, ऑक्साइड निर्माण विधि, ऑक्साइड अपचयन विधि, क्लोराइड निर्माण विधि, धातु विस्थापन विधि, उभय अपघटन विधि, विद्युत अपघटन विधि आदि प्रमुख हैं।

घर से लेकर प्रयोगशालाओं तक चलने वाली अधिकांश अभिक्रियाएँ विलयन में होती हैं। विलयन की सान्द्रता अनेक प्रकार से ज्ञात की जाती है जिसमें **नार्मलता** एक महत्वपूर्ण मात्रक है। किसी दिए गये ताप पर 1 लीटर विलयन में उपस्थित 1 ग्राम तुल्यांकी भारों की संख्या विलयन की नार्मलता कहलाती है।

पदार्थों का तुल्यांकी भार

यह ध्यान देने योग्य बात है कि एक ही पदार्थ का तुल्यांकी भार भिन्न–भिन्न अभिक्रियाओं में भिन्न–भिन्न हो सकता है। विभिन्न पदार्थो का तुल्यांकी भार निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है।

(1) **अम्ल का तुल्यांकी भार** = $\frac{\text{अम्ल का अणुभार}}{\text{अम्ल की क्षारकता}}$

अम्ल की क्षारकता, अम्ल में विस्थापनशील हाइड्रोजनों की संख्या है। चूँकि भ्2व्4 में विस्थापनशील हाइड्रोजन परमाणुओं की संख्या 2 है अतः H_2SO_4 का तुल्यांकी भार= अणुभारध्2 है।

(2) क्षार का तुल्यांकी भार = $\frac{\text{क्षार का अणुभार}}{\text{क्षार की अम्लता}}$

क्षार में विस्थापनशील -OH समूहों की संख्या किसी क्षार की अम्लता कहलाती है। चूँकि $Ca(OH)_2$ में विस्थापनशील -OH समूहों की संख्या 2 है अतरू $Ca(OH)_2$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/2 होगा।

(3) लवण का तुल्यांकी भार = $\frac{\text{लवण का सूत्रभार}}{\text{धनायन या ऋणायन पर कुल आवेश}}$

उदाहरण के लिए $FeCl_3$ का तुल्यांकी भार = अणुभार/3 होगा।
(चूँकि Fe पर 3 का धन आवेश या तीन Cl पर –3 का ऋण आवेश है।)

(4) आक्सीकारकों/अपचायकों का तुल्यांकी भार = $\frac{\text{ऑक्सीकारक/अपचायक का अणुभार}}{\text{एक अणु की ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तन}}$

किसी रिडॉक्स अभिक्रिया में एक अभिकारक आक्सीकारक तथा दूसरा अभिकारक अपचायक होता है। **ऑक्सीकारक** वह पदार्थ है जिसकी ऑक्सीकरण संख्या में कमी आती है तथा **अपचायक** वह पदार्थ है जिसकी ऑक्सीकरण संख्या में वृद्धि होती है।
उदाहरण के लिए–

$$\underset{+7}{2KMnO_4} + \underset{+3}{5H_2C_2O_4} + 3H_2SO_4 = \underset{+2}{2MnSO_4} + \underset{+4}{10CO_2} + K_2SO_4 + 8H_2O$$

उक्त अभिक्रिया में Mn के ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तनः 7 – 2= 5 इकाई
अतः $KmnO_4$ का तुल्यांकी भार= अणुभार/5 होगा।
C के ऑक्सीकरण संख्या में परिवर्तनः 4 – 3= 1 इकाई या एक अणु में 2 इकाई
अतः H_2C2O_4 का तुल्यांकी भार = अणुभार/2 होगा।

चूँकि ऑक्सीकारक/अपचायक पदार्थों की भिन्न–भिन्न अभिक्रियाओं में ऑक्सीकरण संख्याओं में

भिन्न–भिन्न परिवर्तन होता है, अतरू इन पदार्थों का तुल्यांकी भार परिवर्तनीय होता है तथा यह अभिक्रिया–विशेष पर निर्भर करता है।

पदार्थों के तुल्यांकी भार की जानकारी बहुत जरूरी है तथा यह आंकिकध्आयतनी गणनाओं को सरल बनाता है।

(9)

आवर्त सारणी और तत्वों की खोज

डॉ. दुर्गेश नंदिनी गोस्वामी

नेहरू ग्राम भारती विश्वविद्यालय

जमुनीपुर कोटवा, इलाहाबाद

आवर्त सारणी के तत्वों की कहानी बड़ी रोचक है। इसमें कई देशों के वैज्ञानिकों का योगदान है। कुछ तत्व प्रकृति में मिलते हैं जबकि अनेक ऐसे हैं तो कृत्रिम तौर पर निर्मित हैं। स्वीडन के वैज्ञानिकों ने सबसे ज्यादा 23 तत्व खोजे। दूसरा नम्बर इंग्लैण्ड का था वहाँ के वैज्ञानिकों ने कुल मिलाकर 20 तत्व खोजे। तीसरा स्थान फ्रांस का है जहाँ 15 तत्व खोजे गये। तत्वों की खोज में जर्मनी चौथे स्थान पर है जहां 10 तत्व खोजे गये। तीन तत्व टैल्यूरियम, प्रशियोडायमियम तथा नियोडायमियम, आस्ट्रिया में खोजे गये। दो तत्वों की खोज डेनमार्क में हुई। लेकिन तत्वों का **वर्गीकरण तथा आवर्त सारणी तैयार करने का श्रेय महान रूसी वैज्ञानिक मेंडेलीफ को जाता है**। देखा जाए तो यह कार्य नये तत्वों की खोज से कहीं ज्यादा जटिल तथा पेचीदा था।

विभिन्न ऐतिहासिक कालों में तत्वों की खोज 1750 (रासायनिक विश्लेषण के आरंभ का काल) से 1925 (अंतिम स्थायी तत्व रीनियम की खोज का काल) के मध्य है।

1750 से 1925 तक खोजे गए तत्वों की यात्रा

वर्ष	खोजे गये तत्वों की संख्या और नाम	ज्ञात तत्वों की कुल संख्या
1750	16 (C, P, S, Fe, Co, Cu, Rn, As, Ag, Sn, Sb, Pt, Au, Ag, Pb, Bi)	16
1751-1775	8 (H, N, O, F, Cl, Mn, Ni, Ba)	24
1776-1800	10 (Be, Ti, Cr, Y, Zr, Mo, Te, W, U, Sr)	34
1801-1825	18 (Li, B, Na, Mg, Al, Si, K, Ca, Se, Nb, Rh, Pd)	52

	Cd, I, Ce, Ta, Os, Ir)	
1826-1850	7 (V, Br, Ru, La, Tb, Er, Th)	59
1851-1875	5 (Rb, In, Cs, Ti, Ga)	64
1876-1900	19 (He, Ne, Ar, Sc, Ge, Kr, Xe, Pr, Nd, Sm, Gd,	83
	Dy, Ho, Tu, Yb, Po, Ra, Ac, Rn)	
1901-1925	5(Ey, Lu, Hf, He, Pa)	88

तत्वों की निश्चित व्यवस्था। सर्वप्रथम 1869 में मेंडलीफ ने तत्वों के बढ़ते भार के अनुसार उनमें समानताएँ बतलाते हुए, आवर्तक– आवर्त सारणी में क्षैतिज पंक्तियां तैयार कीं। ऐसे कुल सात आवर्तक हैं, जिनमें से प्रथम तीन लघु आवर्तक और अगले चार दीर्घ आवर्तक है।

आवर्त नियम– रूसी रसायनज्ञ दिमित्री मेंडलीव द्वारा सन् 1869 में प्रस्तुत समस्त तत्वों के भौतिक तथा रासायनिक गुणधर्म उनकी प्रोटान संख्या के आवर्ती फलन हैं। उनकी इलेक्ट्रानिक संरचना से सम्बद्ध करने वाली सारणी **आवर्त सारणी** है। इस सारणी के मुख्य अंग समूह (Group) तथा आवर्तक (Periods) है।

आवर्त सारणी में तत्वों के कोश जिस विधि से पूरित होते हैं, उसके अनुसार उन्हें चार **ब्लाकों या समुदायों** में विभाजित किया गया– s, p, d तथा f ब्लाक। तत्वों की संख्या में इजाफा हो रहा है तथा अब तक 118 तत्वों की खोज हो चुकी है।

मेण्डलीफ की आवर्त सारणी के लक्षण

1. **पहले आवर्त में** केवल दो तत्व हैं। इसलिए इसे अतिलघु आवर्त कहते हैं।
2. **आवर्त दो व तीन में** आठ–आठ तत्व हैं तथा इनको लघु आवर्त कहते हैं। तीसरे आवर्त के तत्वों (Na, Mg, Al, Si, P, S, Cl)
3. **चौथे और पाँचवे आवर्त में** 18–18 तत्व है इसलिए इनको दीर्घ आवर्त (Long Period) कहते हैं।
4. **प्रत्येक दीर्घ आवर्त में** प्रथम आठ तत्वों को सामान्य तत्व (Normal Element) तथा शेष दस तत्वों को (transition elements) कहते हैं।
5. **द्वितीय आवर्त के पहले तीन** (लिथियम, बेरिलियम तथा बोरॉन) तीसरे आवर्त के तीसरे आवर्त के तत्वों तथा अगले वर्ग के दूसरे तत्व के साथ विकर्ण समानता प्रदर्शित करते हैं। इस कारण इनके गुण समान होते हैं, जैसे– लिथीयम, मैग्नीशियम के साथ, बेरियम ऐल्यूमीनियम के साथ तथा बोरॉन सिलिकान के साथ विकर्ण समानता प्रदर्शित करता है।

समूह	I	II	III	IV
आवर्त II	Li	Be	B	C
आवर्त II	Na	Mg	Al	Si

इस तरह हम देखते हैं कि आवर्त सारणी की खोज विज्ञान की महानतम खोजों में से एक है जिसने पदार्थ जगत के अध्ययन को सरल तथा रोचक बना दिया।

(10)

पादप एवं जंतु ऊतक तथा उनके कार्य

कुमार भारत भूषण

विज्ञान प्रसार, ए–50, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
सेक्टर–62, नोएडा–201 309 (उत्तर प्रदेश), भारत

सभी जीव, चाहे वे पौधे हों या जंतु, उनका शरीर कोशिकाओं से मिलकर बना होता है। कोशिका किसी भी जीवधारी की संरचनात्मक और क्रियात्मक इकाई होती है। कोशिका को सर्वप्रथम राबर्ट हुक नामक वैज्ञानिक ने 1665 में देखा था। उन्होंने बोतल के कार्क से बने ढक्कन को सूक्ष्मदर्शी से देखा और पाया कि उसमें मधुमक्खी के छत्ते जैसी रचनाएं विद्यमान हैं। हुक तब जान पाए कि ये रचनाएं उस पादप उत्पाद कार्क की आधारभूत इकाई हैं। उन्होंने इसे **सेल** (Cell) नाम दिया जिसका शब्दिक अर्थ है कोष्ठक।

इस खोज के बाद आगे इस दिशा में अनुसंधान होने लगे। यह देखा गया कि पादप और जंतु शरीर में इन कोशिकाओं के अनेक समूह मौजूद होते हैं। वैज्ञानिकों ने पाया कि समान उत्पत्ति और संरचना वाली कोशिकाओं के समूह शरीर में कुछ निश्चित कार्य करते हैं। उन्हें विज्ञान की भाषा में ऊतक (Tissue) कहा गया। उदाहरण के लिए जंतु शरीर में हड्डी की कोशिकाओं का समूह हड्डी के **ऊतक** का निर्माण करता है। पौधों और जंतु ऊतक में कई स्तरों पर अंतर पाया जाता है। पादप और जंतु कोशिका भी परस्पर अलग होती हैं। सबसे बड़ा फर्क यह होता है कि पादप कोशिका के चारों ओर **कोशिका भित्ति** (cell wall) की एक परत मौजूद होती है और जंतु कोशिका में इस रचना का अभाव होता है। पादप उतकों के दो **मुख्य प्रकार** होते हैं, पहला विभज्योतक और दूसरा स्थायी ऊतक। वहीं जंतु ऊतक के मुख्य तौर पर **चार प्रकार** पाए जाते हैं– उपकला ऊतक, मांसपेशीय ऊतक, संयोजी ऊतक और तंत्रिका ऊतक। पौधों और जंतुओं के शरीर में सभी ऊतकों के अलग–अलग निश्चित कार्य होते हैं और इन सभी का आपस में निश्चित समन्वय पाया जाता है। इसके फलस्वरूप ही शरीर में एक समग्र क्रिया होती है। इस प्रस्तुति में पौधों और जंतुओं में पाए जाने वाले ऊतकों, उनकी रचना, उनके कार्य और जीवों के अस्तित्व के लिए उनकी भूमिका के बारे में विस्तार से चर्चा की जाएगी।

(11)
जीव जगत

डा. इरफाना बेगम
विज्ञान प्रसार
सी–24 कुतुब संस्थानिक क्षेत्र
नई दिल्ली–16

हमारे चारों ओर विभिन्न प्रकार की वस्तुएं हैं जिनमें से सजीव और निर्जीव का विभेदन बहुत ही सुविधाजनक रूप में किया जा सकता है। जिनमें जीवन के लक्षण होते हैं वे वृद्धि, श्वसन, गमन, परिसंचरण, पोषण आदि गुणों को प्रदर्षित करते हैं, वे **सजीव** कहलाते हैं। अपने आसपास के सभी सजीवों में अलग–अलग प्रकार के गुण पाये जाते हैं जिनमें से कुछ उनके खास लक्षण होते हैं। जिनके आधार पर उन्हें पहचाना जाता है। इन सजीवों में आपस में कई समानतायें भी होती हैं। इन सबके होते हुये कई सजीव **एककोशकीय** और अत्यधिक सूक्ष्म होते हैं कि इन्हें नंगी आखों से देखना संभव नहीं होता है, वही कई जीवधारी अत्यधिक विशालकाय भी होते हैं।

विविधताओं से परिपूर्ण इस जीव जगत को पनपने में लाखों वर्षों का समय लगा। सजीवों के सम्पूर्ण अध्ययन करने के लिये इसे क्रमबद्ध करने के लिये सदैव से प्रयास किये जाते रहे हैं और प्रारम्भिक समय में अरस्तू ने जीव जगत का सरल तरीके से वर्गीकरण किया जिसमें पौधों को वृक्ष, झाडी और शाक में बांटा तो जन्तुओं को लाल रुधिर कणिका की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति के आधार पर वर्गीकृत किया।

अठाहरवीं शताब्दी में कार्ल लीनियस ने **द्विपद नाम पद्वति** के आधार पर सजीवों का वर्गीकरण किया। इस वर्गीकरण को **द्विजगत वर्गीकरण** के रूप में भी जाना जाता है। इसके आधार पर समूचे जीवजगत को दो जगत– पादप जगत एवं जन्तु जगत में विभाजित किया गया। भले ही इस वर्गीकरण के द्वारा जन्तु एवं पादपों में विभेद करना आसान हो गया किन्तु कई जीवों के वर्गो के स्थान को लेकर दुविधा थी। इस वर्गीकरण के बाद बीसवीं शताब्दी के मध्य में आर. एच. विटेकर नें पांच जगत के आधार पर सजीवों का वर्गीकरण किया। इसमें केवल आकारिकी ही नहीं, बल्कि अन्य विभिन्न गुण जैसे पोषण, जनन एवं जातिगत गुणों को भी वर्गीकरण के आधार में प्रयोग किया। प्राणी जगत के सभी सदस्य बहुकोशिकीय हैं जिन्हें संगठन के स्तर, कोशिकीय संगठन, गुहा, पृष्ठ रज्जु, सममिति, आदि पर पुनः विभाजित किया गया है। इनके अतिरिक्त अन्य लक्षणों को संघ अथवा वर्ग के मुख्य लक्षण के तौर पर शामिल किया गया है।

(12)

कार्बनिक हाइड्रॉक्सी यौगिक – ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल

डॉ. बबिता अग्रवाल

एसोशिएट प्रोफेसर, रसायन विभाग

सी.एम.पी. कॉलेज, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

जब ऐलिफैटिक और ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बन से कोई हाइड्रोजन का परमाणु हाइड्रॉक्सिल समूह (-OH) द्वारा प्रतिस्थापित होता है तो कार्बनिक हाइड्रॉक्सी यौगिक बनते हैं। ये यौगिक क्रमशः ऐल्कोहॉल एवं फीनॉल कहलाते हैं। ऐल्केन का हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न ऐल्कोहॉल (R-OH) है एवं बेंजीन का हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न फीनॉल (Ar-OH) है।

दैनिक जीवन में हम अनेक ऐल्कोहॉलिक हाइड्रॉक्सी यौगिकों का प्रयोग करते हैं। ऐल्कोहॉल का सबसे प्रचलित उदाहरण स्प्रिट (एथेनॉल, C_2H_5OH) है जिसका उपयोग चिकित्सा में, जीवाणुनाशक एवं विलायक के रूप में, तथा फर्नीचर पॉलिश के थिनर के रूप में होता है। हमारा भोजन मुख्यतः कार्बोहाइड्रेट है जैसे– ग्लूकोस, फ्रक्टोज, स्टार्च (आलू, चावल), सुक्रोस (गन्ने की शर्करा), लेक्टोस (दुग्ध शर्करा) आदि। इन सभी में ऐल्कोहॉलिक दृढ़ समूह विद्यमान होता है। पादपों की कोशिका भित्ति सेल्यूलोस की बनी होती है, जो ऐल्कोहॉलिक –OH समूह युक्त कार्बोहाइड्रेट है। हम सभी जानते हैं कि लकड़ी से ही कागज बनता है। साथ ही सूती कपड़ों को निर्मित करने वाली रुई लगभग शुद्ध सेल्यूलोस होती है। यानी सूती वस्त्र एवं कागज सेल्यूलोस यानी –OH समूह युक्त यौगिकों से निर्मित होते हैं।

ऐल्कोहॉल में एक या अधिक हाइड्रॉक्सिल समूह (-OH) ऐलिफैटिक तंत्र (R-OH) के कार्बन परमाणु से सीधे जुड़े होते हैं। ऐल्कोहॉलों को उनमें उपस्थित –OH समूह की संख्या के आधार पर वर्गीकृत किया गया है–

1. मोनोहाइड्रिक ऐल्कोहॉल में एक दृढ़ समूह होता है जैसे मेथेनॉल (CH_3OH), एथेनॉल (C_2H_5OH) इत्यादि। मोनोहाइड्रिक ऐल्कोहॉल प्राथमिक, द्वितीयक एवं तृतीयक कार्बन से जुड़ाव के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं।

(a) प्राथमिक ऐल्कोहॉल – उदा. CH_3OH, C_2H_5OH, $CH_3CH_2CH_2CH_2OH$ (n- ब्यूटेनॉल)

(b) द्वितीयक ऐल्कोहॉल– उदा. $CH_3CHOHCH_3$ (आइसोप्रोपेनॉल), $CH_3CH_2CHOHCH_3$ (आइसोब्यूटेनॉल) एवं

(c) तृतीयक ऐल्कोहॉल – उदा. $(CH_3)_3$-C-OH (t- ब्यूटेनॉल)।

2. डाइहाइड्रिक ऐल्कोहॉल में दो -OH समूह पाए जाते हैं जैसे CH_2OH - CH_2OH (ग्लायकॉल) एवं

3. ट्राईहाइड्रिक ऐल्कोहॉल में तीन -OH समूह होते हैं जैसे, CH_2OH-CHOH-CH_2OH (ग्लिसराल)।

जब हाइड्रॉक्सिल समूह ऐरोमैटिक रिंग से जुड़ा होता है तो ये फीनॉल (Ar-OH) कहलाते हैं। बेंजीन का सबसे सरलतम हाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न (C_6H_5OH) है। इसे कार्बोलिक अम्ल भी कहते हैं। सर्वप्रथम इसका पृथक्करण उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कोलतार से किया गया था। बेंजीन के अन्य मोनोहाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न हैं– o- क्रिसॉल, m- क्रिसॉल, एवं p- क्रिसॉल आदि। बेंजीन के डाइहाइड्रॉक्सी व्युत्पन्न हैं केटेकॉल. रिसार्सिनॉल. क्विनॉल आदि।

फीनॉलिक समूह का भी हमारे जीवन में अत्यंत महत्व है। फलों, सब्जियों, एवं अनाजों में पाये जाने वाले ऐसे हजारों कार्बनिक यौगिक हैं जिनमें फीनॉलिक -OH समूह उपस्थित होता है। ये पॉलीफीनॉल कहलाते हैं। पॉलीफीनॉल को मुख्यतः **चार समूहों** में विभाजित किया गया है– फीनॉलिक एसिड, फ्लैवोनॉयड, लिग्नेन एवं स्टिलबीन। पॉलीफीनॉल में प्रतिऑक्सीकारक गुण पाये जाते हैं। ये एंजाइम कार्यप्रणाली का नियमन करते हैं एवं अभिग्राही कोशिका उद्दीपक होते हैं। ऐसे पेड़–पोधे जिनमें पॉलीफीनॉल यौगिक पाये जाते हैं, वे आयुर्वेदिक एवं चीनी चिकित्सा पद्धति में प्राचीनकाल से ही उपयोग में लाये जा रहे हैं।

(13)

एकीकृत परिपथ – इलेक्ट्रॉनिकी की रीढ़

डॉ. ओउम् प्रकाश शर्मा

उप निदेशक

नेशनल सेंटर फॉर इन्नोवेशन इन डिस्टेन्स एजुकेशन

इन्दिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनिवर्सिटी, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बढ़ते कदमों के साथ हमें नित नए इलेक्ट्रॉनिक उपकरण मिलते जा रहे हैं। इन उपकरणों के आकार एवं भार में कम होने के साथ साथ इनकी कार्य कुशलता में अत्यधिक सुधार हो रहा है। उदाहरण के लिए जिस कंप्यूटर को आज हम कहीं भी कैसे भी इस्तेमाल कर सकते हैं, एक समय वही कंप्यूटर एक बड़े कमरे के आकार का तथा बहुत भारी होता था और इसकी प्रोसेसिंग स्पीड भी बहुत कम होती थी। लेकिन आज कंप्यूटर न केवल छोटे और हल्के हो गए हैं, बल्कि इनकी कार्य क्षमता भी हजारों गुना बढ़ गई है। इसका श्रेय जाता है, **एकीकृत परिपथों यानि इंटीग्रेटेड सर्किट्स** को। दरअसल एकीकृत परिपथ, जिसे आमतौर पर हम **चिप या माइक्रोचिप** के नाम से भी जानते हैं, हजारों–लाखों प्रतिरोधों, संधारित्रों, ट्रांजिस्टरों तथा डायोड आदि से बने अनेक इलेक्ट्रॉनिक परिपथों का एकीकृत एवं अति सूक्ष्म परिपथ होता है।

जब 1958 में टेक्सास इन्स्ट्रूमेंट्स में कार्य करने वाले **जैक किल्बी** ने पहली बार एकीकृत परिपथ की खोज की तो शायद ही किसी ने यह सोचा होगा कि आने वाले समय में एकीकृत परिपथ इलेक्ट्रॉनिकी जगत की रीढ़ बन जाएगा। उसके बाद से तो इस क्षेत्र में हो रही खोजों के फलस्वरूप सूक्ष्म से सूक्ष्मतम एकीकृत परिपथ बनाए जा रहे हैं जिसके फलस्वरूप इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों का न केवल आकार एवं वजन कम हुआ है, बल्कि ये सस्ते, अधिक दक्ष और अधिक व्यावहारिक भी हो गए हैं। सिलिकॉन जैसे अर्धचालक पदार्थों से बनी हमारे अंगूठे के नाखून के आकार से भी छोटी चिप्स पर फोटोलिथोग्राफी प्रक्रिया द्वारा हजारों–लाखों इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों वाले परिपथ बनाए जाते हैं जिन्हें **एकीकृत परिपथ** कहते हैं। सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर इलेक्ट्रॉनिकी के हर क्षेत्र में चिप्स के रूप में एकीकृत परिपथों का उपयोग किया जाता है। चाहे कंप्यूटर हो या लैपटॉप, मोबाइल हो या टैबलेट, सीसीटीवी कैमरा हो या इलेक्ट्रॉनिक पेन, या फिर रिमोट कंट्रोल हो अथवा या मेमोरी चिप, ऐसे सभी इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों में तरह–तरह के एकीकृत परिपथ इस्तेमाल होते हैं।

प्रस्तावित लेख में विभिन्न प्रकार के एकीकृत परिपथों तथा उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा करने के साथ–साथ उनके उपयोगों की जानकारी दी जाएगी। इसके अलावा एकीकृत परिपथों के क्षेत्र में हो रही नवीनतम उपलब्धियों एवं अनुसंधान सम्बंधी कार्यों का भी विवरण दिया जाएगा।

(14)

मानव रोग

सनोज कुमार

स्नातकोत्तर शिक्षक (पी.जी.टी.) बायोटेक्नोलॉजी

केन्द्रीय विद्यालय क्र. 2, नेवीनगर, कुलाबा, मुंबई– 400005

मानव जीवन एवं रोगों का एक अनचाहा संबंध है। हर मनुष्य की इच्छा होती है कि वह निरोगी हो। परन्तु सिर्फ इच्छा रखने मात्र से ही हम रोगों से दूर नहीं हो जाते। बदलते वातावरण तथा जीवन शैली के परिणामस्वरूप मनुष्य न चाहते हुए भी जटिल कष्टकारी रोगों से जकड़ जाता है। कभी कभी उचित उपचार के अभाव में रोग जानलेवा हो जाता है। हमारे आसपास हजारों ऐसे रोगाणु विद्यमान हैं जो हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता के कमजोर होते ही उस पर आक्रमण कर देते हैं और रोग उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे रोगाणु भोजन, पानी, वायु और त्वचा के माध्यम से मानव शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और शरीर के विभिन्न कोशिकाओ, ऊतकों, अंगों को प्रभावित करते हैं जिसके कारण वे सभी अपना कार्य सामान्य रूप से सम्पादित नहीं करते जिससे शारीरिक स्वास्थ्य प्रभावित हो जाता हैद्य कुछ रोगाणु शरीर में दीर्घकालिक रोग उत्पन्न करते हैं जैसे क्षय रोग, एड्स और लीवर किडनी से सम्बंधित बीमारियाँ। बहुत से मानव रोग भोजन, पानी और वायु के द्वारा रोगी व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति में फैल जाते हैं जिन्हें संक्रामक रोग कहते हैं, जैसे मौसमी बुखार, हैजा, क्षय रोग,

चिकन पॉक्स, पोलियो इत्यादि। कुछ रोग जैसे कैंसर, एड्स, मधुमेह आदि संक्रामक कारणों द्वारा नहीं फैलते अपितु उनके कारक कुछ और होते हैं।

एंथ्रेक्स जीवाणुओं द्वारा होने वाला एक रोग है। एंथ्रेक्स संक्रमित जानवरों या पशु उत्पादों के साथ संपर्क से मनुष्यों में फैल सकता है। एंथ्रेक्स, बीजाणु बनाने मृदा जीवाणु **बेसिलस अन्थ्रासिस** से होने वाला एक रोग है। क्षय रोग (टीबी) एक घातक रोग है। जीवाणु **माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस** इस रोग का प्रमुख कारण है। यह आमतौर पर फेफड़ों को प्रभावित करता है। टीबी हवा द्वारा, छींक, खांसी और कफ द्वारा फैलता हैद्य टीबी मनुष्यों को छोडकर किसी भी जानवर में नहीं पाया जाता है। टाइफाइड जीवाणु **साल्मोनेला टाइफी** की वजह से होने वाला एक गंभीर रोग है जो पाचन तंत्र को प्रभावित करता हैद्य मियादी बुखार **साल्मोनेला पैराटाइफी** की वजह से होने वाला एक कम गंभीर रोग है। यह रोग ज्यादातर उन क्षेत्रों में पाए जाता है जहाँ साफ–सफाई की प्रायः कमी होती हैद्य संक्रमण के दो से तीन हफ्ते के भीतर रोगी में निरंतर खांसी, गंभीर पेट दर्द, तेज सरदर्द और धीमी ह्रदय गति जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैंद्य डिप्थीरिया जीवाणु **कोर्नीबैक्टीरियम डिपथेरी** की वजह से गले, नाक और त्वचा में होने वाला संक्रमण है। डिप्थीरिया एक संक्रमित व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में हवा द्वारा या संक्रमित व्यक्ति के घावों के स्राव द्वारा फैलता है। काली खांसी ऊपरी श्वसन प्रणाली के स्तर का एक बेहद संक्रामक और घातक संक्रमण है। यह **बोर्डेटेला परट्युसिस** नामक बैक्टीरिया द्वारा होता है जो छोटे बच्चों में आम तौर पर पाया जाता है। इसके शुरुआती लक्षण सामान्य सर्दी जुखाम जैसे ही होते हैं। संक्रमण के दो हफ्ते बाद ही इसके लक्षण दिखाई देते हैं जिसमे खांसी की एक विशेष आवाज होती है जिसे 'वूफिंग साउंड' कहते हैं। इसमें रोगी को रोगी तीव्र खाँसी देर तक आती है जिससे साँस लेने में तकलीफ होती है। कभी–कभी रोगी को निमोनिया भी हो जाता है।

प्लास्मोडियम वीवेक्स और **प्लास्मोडियम मलेरी** जैसे प्रोटोजोआ मनुष्य में मलेरिया बुखार फैलाते हैं। कालापानी बुखार, मलेरिया के रोगी में उत्पन्न होने वाली एक खतरनाक अवस्था है। इसका कारण **प्लास्मोडियम फैल्सीपैरम** नामक एक परजीवी प्रोटोजोआ है जो मानव के लाल रक्त कोशिका में प्रवेश कर जाता है। **ट्रिप्नोसोमा** एक प्रोटोजोआ परजीवी है जो निद्रा रोग उत्पन्न करता है। सिरदर्द, कमजोरी, नींद जैसे लक्षण दिखने लगते हैं। एन्टअमीबा हिस्टोलिटिका मानव तथा अन्य स्तन धारियों में अमीबिक डिसेंट्री अथवा पेचिश रोग फैलता है। लीश्मानिया नामक प्रोटोजोआ काला अजार नाम की बीमारी का प्रमुख कारण है। प्लेटीहेल्मिन्थीज जैसे लीवर फ्लूक (फैसिओला हिपैटिका), इकाईनोकोकस ग्रेनुलोसस, हुक वर्म आदि बच्चों तथा प्रौढ़ में बीमारियाँ फैलाते हैं। मस्तिष्क, फेफड़ों, लीवर, आंत्र, प्लीहा आदि को नुकसान पहुचाते हैं।

वायरसों द्वारा जनित रोगों में एड्स, हेपेटाइटिस, पोलियो, सार्स, इबोला प्रमुख हैं। एड्स नाम की बीमारी एच.आई.वी. वायरस द्वारा जनित है। एच.आई.वी. मनुष्य की बीमारियों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता को नष्ट कर देता है जिससे वह मनुष्य अन्य बीमारियों से ग्रसित हो जाता है। पोलियो वायरस पाँच वर्ष तक के बच्चों को संक्रमित करता है। इसके कारण बच्चे पक्षाघात और अपंगता के शिकार हो जाते हैं।

(15)

विद्युतचुंबकत्व के नियम तथा उनकी उपयोगिता

आशुतोष कुमार शुक्ल
भौतिकी विभाग, यूइंग क्रिश्चियन कॉलेज
इलाहाबाद, उ.प्र., 211003

मैक्सवेल ने बताया कि विद्युत और चुंबकत्व एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उन्होंने विद्युतचुंबकत्व का एकीकृत सिद्धांत दिया। इसी से विद्युतचुंबकीय तरंगों के अस्तित्व का ज्ञान हुआ। इस प्रस्तुति में हम यह देखेंगे कि किस प्रकार मैक्सवेल समीकरणों से विद्युतचुंबकीय तरंग समीकरण प्राप्त किया जा सकता है। इस निगमन में उपयोगी गणितीय सूत्रों के विषय में भी चर्चा की जाएगी।

प्रस्तुति के पहले भाग में हम आंशिक अवकल समीकरणों के बारे में संक्षिप्त चर्चा करेंगे। इसके बाद अगले चरण में हम कर्ल, डाइवरजेन्स तथा ग्रेडियेंट से परिचित होंगे। उन सदिश सर्वसमिकाओं को भी समझेंगे जिनका उपयोग इस निगमन में किया जाएगा। **विद्युतचुंबकत्व के चार मूल नियम मैक्सवेल समीकरण कहे जाते हैं।** इन चार नियमों के अवकल तथा समाकल रूपों से हम परिचित होंगे। हम यह भी समझने का प्रयास करेंगे कि अवकल प्रारूप समाकल की तुलना में सरल है।

प्रस्तुति के दूसरे भाग में मैक्सवेल समीकरणों से विद्युतचुंबकीय तरंग समीकरण प्राप्त करेंगे। तरंग गति के सामान्य समीकरण से तुलना द्वारा हम विद्युतचुंबकीय तरंगों की चाल के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे। इन तरंगों की गति माध्यम पर किस प्रकार निर्भर करती है, यह भी समझने की कोशिश करेंगे।

(16)

रासायनिक बलगतिकी

डॉ. आरती गुप्ता
रसायन विज्ञान विभाग, सी.एम.पी. कालेज
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सभी रासायनिक क्रियाएँ एक निश्चित वेग से हुआ करती हैं। इनमें से कुछ अभिक्रियाएँ इतनी शीघ्र होती हैं कि इनके वेग को नापा नहीं जा सकता परंतु बहुत–सी अभिक्रियाओं के वेग को हम नाप सकते हें। अभिक्रिया के वेग का अध्यन ही **'रासायनिक बलगतिकी'** कहलाता है। उसकी क्रियाविधि का अध्यन कुछ सिद्धांतों की सहायता से किया जा सकता है।

अभिक्रियाओं का वेग कई बातों पर निर्भर करता है जैसे (1) अभिकारकों की सान्द्रता, (2) उत्प्रेरक की उपस्थिति, (3) ताप का प्रभाव, (4) प्रकाश किरणों का प्रभाव, (5) रेडियोएक्टिव किरणों तथा पराश्रव्य तरंगों का प्रभाव। अभिक्रियाओं का वेग ज्ञात करने के लिए ऐसी भौतिक विधियाँ सुविधाजनक होती हैं जो निकाय में कोई बाधा न डालें। अनुमापन, प्रकाश अवशोषण की माप, विलयन की विद्युत चालकता, गैस के पूर्ण दाब की माप तथा ध्रुवण का अध्ययन आदि कुछ ऐसी विधियाँ हैं जिनकी सहायता से हम अभिक्रिया के वेग को नाप सकते हैं। अभिक्रियाएँ समांगी तथा विषमांगी दोनों होती हैं।

अभिक्रिया के वेग को क्रिया में भाग लेने वाले पदार्थों अथवा बनने वाले पदार्थों में से किसी एक की सान्द्रता के पदों में प्रदर्शित किया जा सकता है। अतः अभिकारकों की सान्द्रता में होने वाली कमी अथवा अभिक्रिया–फलों की सान्द्रता में होने वाली वृद्धि के वेग के मापन द्वारा हम अभिक्रिया वेग ज्ञात कर सकते हें। सान्द्रता में वृद्धि के वेग को dc/dt द्वारा, तथा सांद्रता में कमी के वेग को -dc/dt द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यहाँ पर 'c' सान्द्रता तथा 't' समय है। अभिक्रिया वेग अभिकारकों की सान्द्रता पर किस प्रकार निर्भर करता है, इसे हम अभक्रिया की कोटि द्वारा प्रकट करते हैं। **अभिक्रिया की कोटि** अणुओं अथवा परमाणुओं की वह संख्या है जिनकी सान्द्रताओं पर अभिक्रिया का वेग निर्भर करता है। जिन अभिक्रियाओं का वेग किसी एक अभिकारक की सांद्रता के प्रथम घात पर निर्भर करता है उन्हें **प्रथम कोटि** की अभिक्रिया कहते हैं। यदि वेग दो अभिकारकों की सान्द्रताओं के गुणनफल के समानुपाती होता है तो इन अभिक्रियाओं को **द्वितीय कोटि** की अभिक्रिया कहते हैं।

प्रथम कोटि की अभिक्रियाः $k = \frac{2.303}{t} log \frac{a}{a-x}$

शर्करा विलयन का ग्लूकोस तथा फ्रक्टोस में जल–अपघटन (हाइड्रोजन आयन द्वारा उत्प्रेरित) प्रथम कोटि की अभिक्रिया है। किसी क्षार द्वारा उत्प्रेरित एथिल एसीटेट का जल–अपघटन द्वितीय कोटि की अभिक्रिया है। अभिक्रियाओं का वर्गीकरण आण्विकता के आधार पर भी किया जाता हे। आण्विकता का अर्थ अणुओं अथवा परमाणुओं की उस संख्या से है जो अभिक्रिया में वास्तव में भाग लेते हैं। इसी आधार पर हम अभिक्रियाओं को **एकाणुक, द्विअणुक, त्रिअणुक** अभिक्रियाओं में वर्गीकृत करते हैं।

बहुत–सी ऐसी अभिक्रियाएँ ज्ञात हैं जो वास्तव में द्विअणुक अथवा त्रिअणुक होती हैं परंतु उनकी कोटि एक पायी जाती है।

अभिक्रिया की कोटि ज्ञात करने की चार मुख्य विधियाँ इस प्रकार हैंः–

1. समाकलन विधि
2. अर्ध–काल विधि
3. पार्थक्य विधि
4. अवकलन विधि

इस प्रकार हमने देखा की रासायनिक परिवर्तन पर सान्द्रता का बहुत प्रभाव पड़ता है। अभिक्रिया का वेग पर

ताप के परिवर्तन का भी प्रभाव पड़ता है। साधारणतया ताप में 10^0C की वृद्धि होने पर अभिक्रिया का **वेग दुगुना** हो जाता है। अभिक्रिया के वेग पर ताप के प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिए निम्नलिखित संबंध प्रयुक्त किया जाता है:–

$$\frac{dlnk}{dT} = \frac{E}{RT^2}$$

यहाँ पर 'k' विशिष्ट वेग, 'E' संक्रियण ऊर्जा, 'R' गैस स्थिरांक तथा 'T' परमताप है। इस समीकरण को **आर्हीनियस समीकरण** कहते हैं। रासायनिक क्रिया में भाग लेने से पूर्व अणुओं को सक्रियित होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक ऊर्जा के मान को **संक्रियण ऊर्जा** कहते हैं। सक्रियित संकर सिद्धांत के अनुसार अभिक्रिया में अभिकारक सक्रियित होकर **सक्रियित संकर** बनाते हें जो एक माध्यमिक अवस्था है और उसके पश्चात् संकर टूट जाता है तथा अंतिम क्रियाफल प्राप्त होता है। उत्प्रेरक की उपस्थिति अभिक्रिया के वेग को तीव्रता प्रदान करती है।

(17)

बफर विलयन, उनके गुणधर्म एवं उपयोगिता

संजय कुमार पाठक
वैज्ञानिक अधिकारी (ई)
नियंत्रण प्रयोगशाला, ईंधन पुनर्संसाधन प्रभाग
भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र, ट्राम्बे, मुंबई –400085

प्रकृति में व्याप्त अधिकांश वस्तुएं मुख्यतः हाइड्रोजन (H), कार्बन (C), नाइट्रोजन (N) एवं आक्सीजन (O) से मिलकर बनी होती हैं। लगभग सभी वस्तुओं के जलीय विलयन का एक निश्चित पीएच (pH) मान होता है जो उन वस्तुओं के अम्लीय (Acidic), क्षारीय (Basic) या उदासीन (Neutral) होने का द्योतक होता है। किसी विलयन का पीएच मान उसमें उपस्थित हाइड्रोजन आयन (H^+) तथा हाइड्रॉक्सिल आयनों (OH^+) की सांद्रता पर निर्भर करता है। अर्थात किसी विलयन में अम्ल (Acid) या क्षार (Base) की मात्रा बढ़ा अथवा घटा कर उस विलयन के पीएच मान में परिवर्तन किया जा सकता है। इसके विपरीत कुछ ऐसे विलयन होते हैं जिनका पीएच स्थिर होता है तथा उनमें अम्ल या क्षार की थोड़ी मात्रा मिलाने पर उनके पीएच मान में कुछ खास परिवर्तन नहीं होता है। ऐसे विलयन बफर विलयन (Buffer solution) कहलाते हैं। बफर विलयन प्रायः किसी दुर्बल अम्ल व उसके लवण अथवा दुर्बल क्षार व उसके लवण के समिश्रण से बनते हैं। जैसे कि ऐसिटिक अम्ल (CH_3COOH) व सोडियम ऐसीटेट (CH_3COONa) या अमोनियम हाइड्राक्साइड NH_4OH व अमोनियम एसीटेट (CH_3COONH_4) का विलयन। बफर विलयन की क्षमता उपयोग किये गए दुर्बल अम्ल या क्षार के

वियोजन स्थिरांक (pKa या pKb) तथा लवण एवं अम्ल या क्षार के अनुपात पर निर्भर करती है। उचित रसायनों का प्रयोग कर विभिन्न पीएच मान वाले बफर विलयन तैयार किये जा सकते हैं।

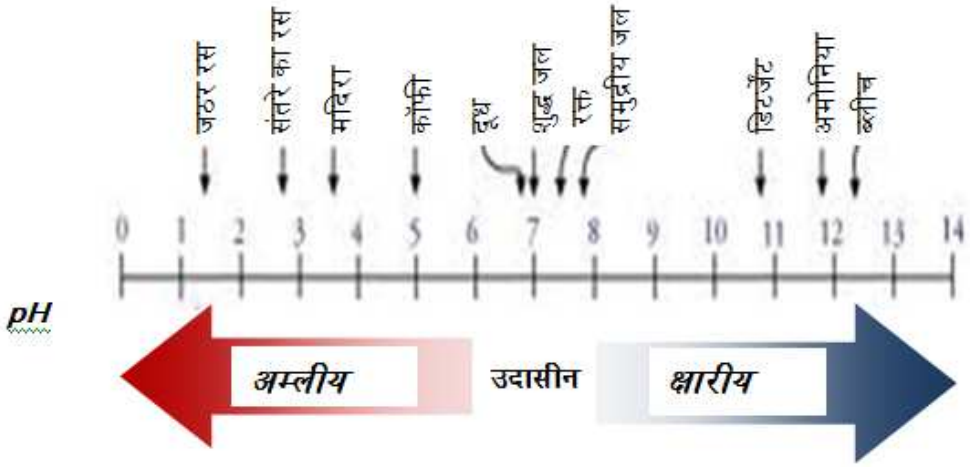

चित्र– विभिन्न विलयनों के पीएच मान

चूंकि बफर विलयन का मुख्य गुणधर्म, तनुकरण (dilution) अथवा किसी प्रबल अम्ल या प्रबल क्षार के प्रभाव से, विलयन के पीएच मान में होने वाले परिवर्तन को रोकना है अतः एक विशिष्ट पीएच मान पर क्रियान्वित होने वाली विभिन्न रासायनिक एवं जैविक प्रक्रियाओं में बफर विलयन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रयोगशालाओं में बफर विलयनों का मुख्य उपयोग ज्ञात एवं नियत पीएच मान वाले मानक विलयनों (Standard solutions) को बनाने में किया जाता है। अनुमापनमिति (Titrimetry), अवक्षेपण (Precipitation), इलेक्ट्रोप्लेटिंग तथा संसाधित खाद्य व पेय पदार्थों के संरक्षण में बफर विलयनों का बहुतायत से उपयोग होता है। औषधि विज्ञान तथा जैवरसायन में बफर विलयन की उपयोगिता इस बात से ही सिद्ध होती है कि रक्त के पीएच मान में ± 0. 5 का परिवर्तन भी जानलेवा हो सकता है। जीवित कोशिकाओं में होने वाली विभिन्न प्रकार की एंजाइम अभिक्रियाएं पीएच पर निर्भर होती हैं और बफर की अनुपस्थिति में ऐसी अभिक्रियाएं रुक जाती हैं अथवा उनकी दर कम हो जाती है। बफर विलयनों के बहुआयामी अनुप्रयोगों को ध्यान में रखते हुए इस व्याख्यान के अंतर्गत बफर विलयन की संकल्पना, विविध प्रकार, निर्माण एवं विश्लेषण की तकनीक आदि पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की जायेगी।

(18)

पृष्ठतनाव की रोचक व्याख्या

अखिलेश कुमार श्रीवास्तव

प्रधानाचार्य, रा. उ. मा. वि. तगावली, धौलपुर, राजस्थान

प्रत्येक द्रव के पृष्ठ पर ऐसा तनाव, जिसमें वह तनी हुई रबर की प्रत्यास्थ झिल्ली की तरह न्यूनतम क्षेत्रफल प्राप्त करने का प्रयास करे, **पृष्ठ तनाव** कहलाता है। तनी हुई रबर की प्रत्यास्थ झिल्ली का तनाव तो तनन के साथ बढ़ता है जबकि द्रवों का पृष्ठ तनाव स्थिर होता है। पृष्ठ तनाव के विभिन्न उदाहरण वर्षा व ओस की छोटी बूंदें, साबुन के बुलबुले, पारे की बूंद, किसी चूड़ी या वलय के अन्दर साबुन के घोल पर लगे धागे के आकृति में परिवर्तन, जल के पृष्ठ पर कपूर के टुकड़े का नृत्य, ठन्डे सूप की तुलना में गर्म सूप अधिक स्वादिष्ट लगना, फव्वारे या फुहार का पानी अधिक ठंडा होना आदि।

पृष्ठ तनाव द्रव की **श्यानता** पर निर्भर करता है। यह पृष्ठ के क्षेत्रफल तथा काल्पनिक रेखा की लम्बाई पर निर्भर नहीं करता है। यह एक अदिश राशि हैं क्योंकि इसकी दिशा नहीं हैं। पृष्ठ तनाव द्रव के पृष्ठ के दूसरी ओर स्थित माध्यम पर भी निर्भर करता है। ताप बढने के साथ पृष्ठ तनाव का मान घटता है तथा क्रांतिक ताप पर इसका मान शून्य हो जाता है। पृष्ठ तनाव एक आणविक घटना है जिसका मूल कारण विद्युत चुम्बकीय बल है। द्रव के अन्दर प्रत्येक अणु का प्रभाव गोला पूर्णतया द्रव के अन्दर होता है तथा इस प्रभाव गोले के केन्द्रीय अणु पर अन्य अणुओं के ससंजक बल के कारण परिणामी बल शून्य होता है। लेकिन द्रव की सतह पर स्थित अणु के प्रभाव गोले का आधा भाग द्रव के बाहर होता है, जिससे उस केंद्रीय अणु पर लगने वाले परिणामी बल की दिशा द्रव के अन्दर की ओर होती है, फलस्वरूप अणु द्रव के अन्दर जाता है।

कागज का फूल खिलाना, पानी को बूंदों की रेलगाड़ी, पानी भरे गिलास में प्लास्टिक– ढक्कन को बीचों बीच में तैराना, बोतल से निकलती धाराओं को बांधना खोलना, माचिस की तीलियों से तारानुमा आकृति बनाना, ब्लेड या आलपिन को जल में तैराना, कीप या फनल में साबुन के बुलबुले का आकार में परिवर्तन होना, किसी चूड़ी या वलय में साबुन के घोल में बने धागे की आकृति में परिवर्तन होना, शेविंग ब्रश को पानी से भरे बर्तन में से निकालने पर उसके बाल पास पास आ जाना, पेपर जिप, गिलास में तैरती तीलियों का दूर जाना, पाउडर की सहायता से जल की सतह का टूटना दिखाना, फुहारने से द्रव का ठंडा होना, जल की सतह पर कपूर का नृत्य करना, इन उदाहरणों से इसे और अच्छी तरह से समझाया जा सकता है।

(19)

मानव स्वास्थ्य और भोजन हेतु जैव प्रौद्योगिकी

प्रो. शरद कुमार मिश्रा
जैव प्रौद्योगिकी विभाग
दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय,
गोरखपुर–273009 (उत्तर प्रदेश)

जैव प्रौद्योगिकी विज्ञान का एक बेहद व्यापक एवं रोमांचक क्षेत्र है और इसका उपयोग विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों जैसे औषधि तथा कृषि में किया जाता है। आज के समय में हमारे जीवन के लगभग हर एक क्षेत्र में जैव प्रौद्योगिकी अपनी अहम भूमिका निभा रही है। जैव प्रौद्योगिकी चिकित्सा विज्ञान के लिए अनेक प्रकार से वरदान साबित हुआ है। बीमारियों से लड़ने में शरीर की प्रतिरक्षा शक्ति बढाने की बात हो या फिर जेनेटिक तौर पर बेहतर इलाज उपलब्ध कराना हो, जैव प्रौद्योगिकी चिकित्सा जगत का एक अभिन्न हिस्सा बन गया है। जीन प्रोब जैसी आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी तकनीकों के जरिये रोग की सटीक पहचान अब एक आम बात हो गई है। हाइब्रिडोमा प्रौद्योगिकी से निर्मित मोनोक्लोनल एंटीबाडी, रोग पहचान और संबंधित शोध के लिए एक अहम युक्ति होती है। जेनेटिक इंजीनियरिंग में विकास के साथ प्रभावी और कुशल टीकों (वैक्सीन) का निर्माण संभव हो पाया है। खाए जा सकने वाले टीकों पर शोध जारी है। जीन थिरेपी एक संभावनाशील प्रौद्योगिकी के रूप में विकसित हुआ है जिसमें वंशानुगत जेनेटिक विकारों को दूर करने के लिए जीनों का प्रयोग दवाओं के तौर पर किया जाता है। **डीएनए फिंगरप्रिंटिंग तकनीक** के विकास ने अपराधियों और अभिभावक की पहचान करने में अत्यंत महत्व दर्शाया है। टिशू रिजेनरेशन तकनीक से त्वचा ग्राफ्टिंग संभव हो पाया है। प्रजनन को नियंत्रित करने के लिए गर्भनिरोधक दवाएं विकसित की गई हैं। बच्चा न होने की स्थिति में टेस्ट ट्यूब बेबी तकनीक का सहारा लिया जाता है। गर्भ में पल रहे शिशु में कोई वंशानुगत दोष है, इस बात का अब जेनेटिक काउंसेलिंग की मदद से पता लगाना संभव है। किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत जेनेटिक बनावट को ध्यान में रखकर आज दवा का निर्माण फार्माकोजिनोमिक्स के द्वारा संभव हो गया है। औषधि और प्रौद्योगिकी में प्रगति के साथ लोग सुदीर्घ तथा सुखद जीवन का आनंद उठा रहे हैं।

दुनिया के तमाम हिस्सों में भूख की समस्या एक चुनौती बनी हुई है और यहां पर भी जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पर्याप्त और पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराना संभव हुआ है। कृषि में जैव प्रौद्योगिकी अनुप्रयोग के सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हैं **जेनेटिकली माडीफाइड आर्गेनिज्म** (जीएमओ)। कृषि क्षेत्र में अब **जेनेटिकली माडीफाइड क्राप** (बायोटेक क्राप) के उपयोग किये जाते हैं। इन पौधों में डीएनए को जेनेटिक इंजीनियरिंग तकनीकों की मदद से परिवर्तित कर दिया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य पौधे में एक ऐसे नये लक्षण का विकास करना होता है जो प्राकृतिक रूप से नहीं पाया जाता है। उदाहरण के लिए पीड़क (पेस्ट), रोग और कठिन पर्यावरणीय दशाओं (जैसे तापमान, सर्दी, सूखा, लवणीयता आदि) से बचाव के लिए पौधों की विशेष प्रजातियों

का विकास करना। विशेष रूप से गरीब देशों में विटामिन श्एश् की कमी से लड़ने के लिए गोल्डन राइस का विकास किया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव जीवन को गुणवत्तापूर्ण बनाने की दिशा में जैव प्रौद्योगिकी ने अनेक संभावनाओं को जन्म दिया है। इसके साथ ही हमें जैव प्रौद्योगिकी उत्पादों और प्रक्रियाओं से जुड़े जैव सुरक्षा तथा नैतिक सरोकारों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है।

(20)
ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर

पूनम त्रिखा
प्रोग्रामर, विज्ञान प्रसार
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, नोएडा

दैनिक जीवन में कंप्यूटर का उपयोग करते समय हम बहुत सारे सॉफ्टवेयर का उपयोग करते हैं। इन सॉफ्टवेयर की उपयोगिता भी अलग–अलग होती है जैसे कि इंटरनेट का उपयोग करने के लिए तरह–तरह के ब्राउजर सॉफ्टवेयर, टाइप करने के लिए वर्ड सॉफ्टवेयर, प्रेजेन्टेशन के लिए पॉवरपॉइंट, ग्राफिस डिजाइन करने के लिए एडोब इनडिजाइन, पेजमेकर सॉफ्टवेयर होते है। इन सभी सॉफ्टवेयर को चलाने के लिए भी हमें ऑपरेटिंग सिस्टम सॉफ्टवेयर की जरूरत होती हैं। इन सब कार्यों के लिए लाइसेंस सॉफ्टवेयर लेने होते है और उनके लिए धन की भी आवश्यकता होती है। इसी समस्या का समाधान कुछ हद तक ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर कर रहे हैं। ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर के बारे में जानने से पहले जानते है, **प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर** क्या होते हैं?

आमतौर पर जब कोई सॉफ्टवेयर बनाया जाता है और उसे लॉन्च किया जाता है तो उस सॉफ्टवेयर के साथ उसका **सोर्स कोड** नहीं दिया जाता है। सोर्स कोड सॉफ्टवेयर बनाने वाले के पास ही रहता है। एक उपयोगकर्ता के रूप में आप उस सॉफ्टवेयर के फंक्शन्स और फीचर्स का उपयोग कर सकते हैं। आप यदि उस सॉफ्टवेयर में अपनी सुविधानुसार कोई परिवर्तन करना चाहें तो ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि उसके सोर्स कोड तक आपकी पहुंच नहीं होती है। हर सॉफ्टवेयर बनाने वाली कंपनी अपने सॉफ्टवेयर की आंतरिक संरचना, कोड्स आदि को अपने पास रखती है। सॉफ्टवेयर से संबंधित सभी अपग्रेड्स और डेवलपमेंट्स डेवलपर के द्वारा ही किए जा सकते हैं अर्थात् सारे अधिकार सॉफ्टवेयर बनाने वाली कंपनी के पास ही रहते हैं। ऐसे सॉफ्टवेयर प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर कहलाते हैं।

इससे पहले कि हम **ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर** के बारे में बात करें, हमारे लिए यह बेहतर होगा कि पहले हम सोर्स कोड के बारे में थोड़ा जान लें। सॉफ्टवेयर के क्षेत्र में दो तरह के कोड्स की आमतौर पर चर्चा

होती है– सोर्स कोड और ऑब्जेक्ट कोड। जब किसी प्रोग्रामिंग लैंग्वेज जैसे सी, सी़, जावा आदि में कोई प्रोग्राम लिखा जाता है तो वह प्रोग्राम इंस्ट्रक्शंस (कंप्यूटर को दिए जाने वाले कंमाड) का समूह होता है, जो विशेष प्रकार के काम करने के लिए लिखा जाता है। **प्रोग्राम इंस्ट्रक्शन्स** एक तरह से कंप्यूटर की भाषा (प्रोग्रामिंग लैंग्वेज) में लिखा गया कोड ही होता है। इन्हीं कोड्स को **सोर्स कोड** कहा जाता है, लेकिन कंप्यूटर इन सोर्स कोड को (जो डेवलपर द्वारा विभिन्न प्रोग्रामिंग लैंग्वेजों में लिखा जाता है) समझ नहीं सकता है। उस सोर्स कोड को हम और आप पढ़ और समझ सकते हैं। अब कंप्यूटर उस सोर्स कोड में लिखे इंस्ट्रक्शंस को समझ सके, इसलिए कंपाइल (एक विशेष प्रकार का सॉफ्टवेयर) की सहायता से सोर्स कोड को ऑब्जेक्ट कोड में परिवर्तित किया जाता है। यह ऑब्जेक्ट कोड बाइट्स सिक्वेंस अर्थात् जीरो और वन के रूप में लिखा होता है, जो मनुष्य द्वारा नहीं पढ़ा जा सकता है।

ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर से अर्थ है किसी भी कंप्यूटर सॉफ्टवेयर का उसके डेवलपर, जिसने उस सॉफ्टवेयर का निर्माण किया है, उसके सोर्स कोड को एक लाइसेंस के साथ सार्वजानिक तौर पर सभी को उस सॉफ्टवेयर को पढ़ने, उसमें सुधार करने और किसी को भी किसी भी उद्देश्य के लिए उपलब्ध करवाने के अधिकार दे देता है। ओपेन सोर्स सॉफ्टवेयर से ऑफिस में होने वाले सारे कार्य करना, लिखना, इन्टरनेट पर जाना, तरह तरह के प्रेजेन्टेशन बनाना, गाने सुनना, डीवीडी देखना, ब्लॉग या वेबसाइट बनाना, या और कुछ जो कि हम सब करना चाहते हैं उतना ही सरल है जितना कि प्रोप्राइट्री सॉफ्टवेयर से कर सकते हैं।

इसमें विभिन्न प्रकार के ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर और उनकी उपयोगिता के बारे में चर्चा करेगें। हमारे लिए कितने जरूरी हैं ओपन सोर्स सॉफ्टवेयर और ये दूसरे सॉफ्टवेयर से कैसे अलग हैं तथा इनमें किस तरह के कॉपीराइट होते हैं, इसकी भी चर्चा करेगें।

(21)

जीवों का विकास और डार्विन का प्राकृतिक चयन सिद्धांत

मनीष मोहन गोरे

विज्ञान प्रसार

ए–50, इंस्टीट्यूशनल एरिया,

सेक्टर–62, नोएडा दृ 201 309 (उ.प्र.)

ई–मेल: mmgore1981@gmail-com

सौरमंडल में हमारे ग्रह पृथ्वी पर ही जीवन अनेक रूप–आकारों में मौजूद है। यहां जीवन का अतीत लगभग 3.5 करोड़ वर्ष पुराना है। पानी के अंदर पहले एककोशिकीय और सरलतम जीव की उत्पत्ति के बाद क्रमशः बहुकोशिकीय तथा जटिल शरीर रचना वाले जीव–जंतुओं का विकास पृथ्वी पर हुआ है। भूमि, समुद्र, पहाड़, बर्फ, मरुस्थल आदि धरती के सभी स्थानों पर जीवन मौजूद है। सोचने–समझने और तर्क करने की क्षमता

की वजह से मनुष्य जीव जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होता है।

जीवों की विविधता जीव विकास का परिणाम होती है। विकास की प्रक्रिया कभी रुकती नहीं है और यह बहुत धीमी गति से प्रकृति में चलती रहती है। विकास की गति धीमी होने के कारण एक जीव प्रजाति में कोई मामूली सा बदलाव प्रकट होने में लाखों–करोड़ों वर्ष लग जाते हैं। अनेक भौतिक, रासायनिक, जैविक और भौगोलिक परिस्थितियों तथा उत्परिवर्तन के प्रभाव में जीवों में नैसर्गिक बदलाव दर्ज होता है।

जीव वैज्ञानिक चार्ल्स डार्विन ने बीगल नामक समुद्री जहाज पर लगभग 5 वर्षों तक यात्रा की और इस दौरान उन्होंने असंख्य द्वीपों और भूखंडों में पाए जाने वाले जीव–जंतुओं में अनेक प्राकृतिक बदलाव देखे। उन्होंने पाया कि अलग भौगोलिक स्थितियों और जलवायु में फिंच नामक एक ही पक्षी के शरीर की बनावट और व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है। इसके पीछे छिपे नैसर्गिक कारण का पता लगाते हुए वे एक सिद्धांत पर पहुंचे जिसे उन्होंने **'प्राकृतिक चयन सिद्धांत'** नाम दिया। इस सिद्धांत से यह बात स्पष्ट हुई कि जीव प्रजातियों में समय के साथ बदलाव आना एक प्राकृतिक प्रक्रिया होती है। जीवाश्मों के अध्ययन से इस बात के असंख्य प्रमाण मिलते हैं। सभी जीवधारियों के समान पूर्वज होते हैं। सरल शब्दों में डार्विन के प्राकृतिक चयन सिद्धांत को इस कथन के द्वारा समझा जा सकता है **"जीवों की विविधता और उनके बीच अस्तित्व को लेकर प्रतिस्पर्धा में केवल वे ही जीव या जीवों में वे ही लक्षण आगे की पीढी में जाते हैं जो दूसरों से सशक्त होते हैं।** दूसरे शब्दों में इसी बात को कह सकते हैं कि प्रकृति उन्हीं जीवों का चयन करती है जो अपने सामर्थ्य से खुद का अस्तित्व कायम रख पाते हैं"। इस प्रस्तुति में जीव विकास की प्रक्रिया, इसके पूर्ववर्ती सिद्धांतों और डार्विन के क्रन्तिकारी प्राकृतिक चयन सिद्धांत के बारे में उदाहरण सहित विस्तृत चर्चा की जाएगी।

(22)

जैविक अणु

डॉ. धनंजय चोपड़ा

पाठ्यक्रम समन्वयक, सेन्टर ऑफ मीडिया स्टडीज

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद–211002

समस्त जीवों का शरीर सजीव पदार्थ से बना होता है। इस पदार्थ को पहले परकिन्जे (1840) ने और बाद में ह्यूगो वॉन मोहल (1846) ने जीवद्रव्य अर्थात् प्रोटोप्लाज्म का नाम दिया। इस सजीव पदार्थ की जैव शक्ति इसके रासायनिक संघटन पर निर्भर करती है। वास्तव में सजीव पदार्थ कई प्रकार के अणुओं का मिश्रण होता है और जीवन संचालित करते रहने के लिए रासायनिक ऊर्जा को जैव ऊर्जा में बदलने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। यही वजह है कि मैक्स शूल्ज नाम के वैज्ञानिक ने सजीव पदार्थ यानी प्रोटोप्लाज्म को जीवन का भौतिक आधार की संज्ञा भी दी।

सजीव पदार्थ एक जलीय तरल मिश्रण होता है जिसमें कार्बनिक व अकार्बनिक यौगिक उपस्थित होते हैं। जीवद्रव्य का अधिकांश भाग जल होता है और इस जल में घुले 99 प्रतिशत विलेय कार्बनिक यौगिकों के अणु होते हैं। इनके अतिरिक्त सजीव पदार्थ में अकार्बनिक यौगिक भी होते हैं। ये अकार्बनिक यौगिक जल, अम्लों, क्षारों और लवणों के अणुओं से बने होते हैं। मुख्य रूप से सजीव पदार्थ के कार्बनिक अणु ही **जैविक अणु** कहलाते हैं। ये ही अणु जीव पदार्थ के संरचनात्मक और क्रियात्मक रासायनिक संघटन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सजीव पदार्थ के जैविक अणुओं में कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, प्रोटीन एवं न्यूक्लिक अम्ल मुख्य रूप से शामिल हैं। वास्तव में यही वे अणु हैं, जो जीवन को बनाने और उसे सक्रिय बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जीव शरीर की प्रत्येक कोशिका में सजीव पदार्थ के संयोजन में हजारों प्रकार के कार्बनिक अणु होते हैं। कार्बनिक अणुओं की इतनी विविधता इनके संश्लेषण की प्रकृति पर निर्भर करती है। संश्लेषण के दौरान होने वाली प्रक्रियाएं जैसे कार्बन परमाणुओं का श्रृखंलन, कार्बन परमाणुओं का अन्य अधात्विक परमाणुओं से जुड़ने और बहुलीकरण की प्रक्रियाएं ही जैविक अणुओं की प्रकृति और उनके प्रकार को तय कर देती हैं।

कार्बोहाइड्रेट मानव आहार के प्रमुख घटक होते हैं और जीव ऊर्जा के प्रमुख स्रोत होते हैं। संगठनात्मक स्तर के अनुसार इनकी तीन प्रमुख श्रेणियां होती हैं– मोनोसैकेराइड, ओलिगोसैकेराइड तथा पॉलीसैकेराइड। इसी तरह लिपिड भी अपने रासायनिक संयोजन के आधार पर कई प्रकारों में विभक्त किए जाते हैं। इनमें फास्फोलिपिड, स्फिगोलिपिड, कांजुगेटेड लिपिड, टर्पीन, स्टीरॉयड आदि। प्रोटीन वास्तव में ऐमिनो अम्लों के लम्बे व अशाखित सूत्रनुमा बहुलक होते हैं। इन्ही ऐमिनो अम्लों की प्रकृति के आधार पर ही प्रोटीनों का वर्गीकरण किया जाता है यथा फाइब्रस प्रोटीन, ग्लोब्यूलर प्रोटीन, कॉन्जुगेटेड प्रोटीन, डिराइव्ड प्रोटीन, आदि। कोशिका के सजीव पदार्थ में सबसे महत्वपूर्ण जैविक अणु के रूप में न्यक्लिक अम्ल होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– डीएनए तथा आरएनए।

इस तरह हम कह सकते हैं जैविक अणु किसी संजीवन की जीवनी शक्ति के पर्याय होते हैं। जीव शरीर की संरचनात्मक और क्रियात्मक इकाई कोशिका की बनावट और कार्यिकी इन्ही अणुओं पर निर्भर करती है। यही वजह है कि इनका विस्तृत अध्ययन हमें अपने जैविक आधार को बेहतर ढंग से समझने में मदद करता है।

(23)

हारमोन का समन्वयन

सचिन सी नरवड़िया

वैज्ञानिक– सी

विज्ञान प्रसार, ए–50, सेक्टर 62, संस्थागत क्षेत्र, नोएडा– 201309

हमारा शरीर तंत्रिका तंत्र और हारमोन समन्वयन के माध्यम से समस्थापन रखता है। ग्रंथियां दो प्रकार की होती हैं। इनमें बहिःस्रावी और अंतःस्रावी ग्रंथियां समिल्लित हैं। इन ग्रंथियों से निकलने वाले स्राव को हारमोन कहते हैं। **बहिःस्रावी ग्रंथि–** यह ग्रंथि, अपना स्राव को नलिका के माध्यम से एक जगह से दूसरी जगह पहुचाती है। **अंतःस्रावी ग्रंथि–** यह ग्रंथि, अपना स्राव सीधे रक्त में मिश्रित कर देती है। अंतःस्रावी ग्रंथि द्वारा होने वाले स्राव को **हारमोन** कहते हैं। ये हारमोन ऐमीन, पेप्टाइड और स्टेरायड से बने होते हैं। कोशिकाओं के ऊपर इन हारमोनों के चिपकने के लिए विशिष्ट अभिग्राहक मौजूद होते हैं। कोशिकाओं से इनके स्राव तथा कार्यो के आधार पर इनका वर्गीकरण किया जाता है। जैसे एक कोशिका से निकालकर हारमोन उसी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता हैं, तो उसे **ऑटो–क्रीन** कहते हैं। अगर एक कोशिका से निकालकर हारमोन दूसरी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता हैं तो उसे पैरा–क्रीन कहते हैं। और अगर एक कोशिका से निकालकर हारमोन रक्त में प्रवाहित होकर दूर स्थित दूसरी कोशिका पर अपना कार्य दर्शाता हैं, तो उसे **अंतःस्रावी या इंडो–क्रीन कहते हैं।**

हारमोनों का स्राव ऋणात्मक प्रतिपुष्टि प्रणाली पर आधारित होता है। ऋणात्मक प्रतिपुष्टि प्रणाली का मतलब एक स्रावित हारमोन की सांद्रता ही उस हारमोन के स्राव को नियंत्रित करती है। जब हारमोन की सांद्रता कम होगी तो स्राव होने की प्रक्रिया बढ़ जायेगी और जब सांद्रता ज्यादा होगी तो स्राव की दर धीमी होती जायेगी।

एपोक्रिन ग्रंथि, बाऊहिन् ग्रंथि, ब्रन्नर ग्रंथि, कोबैली ग्रंथि आदि बहिःस्रावी ग्रंथियां हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों में अधिवृक्क ग्रंथि (एड्रिनल), हाइपोथैलेमस, पीनियल, पीयूष ग्रंथि, थाइराइड ग्रंथि, अंडाशय, शुक्र ग्रंथि, अग्न्याशय शामिल हैं।

इस आलेख में हारमोन का बनना, उनका कार्य और समन्वयन संक्षेप में समझाया गया है।

(24)

सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण और केप्लर के नियम

डॉ. मनोज कुमार श्रीवास्तव

असिस्टेंट प्रोफेसर, भौतिकी विभाग

आर्मी कैडेट कालेज

इण्डियन मिलिटरी एकेडमी, देहरादून–248007

सामान्यतया जब हम किसी वस्तु को पृथ्वी की सतह से बाहर की तरफ फेंकते हैं तो वह पुनः लौट कर धरती पर गिरती है। बादलों से वर्षा की बूंदें भी नीचे धरती पर ही गिरती हैं। महान खगोलविज्ञानी एवं भौतिकशास्त्री गैलीलियो (1564–1642) ने पहली बार पाया कि प्रत्येक वस्तु पृथ्वी की तरफ एक ही त्वरण से गिरती है चाहे उसका द्रव्यमान कुछ भी हो। प्राचीन काल से ही अंतरिक्ष अवलोकन मानव के लिए कौतूहल भरा रहा है। आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व सर्वप्रथम टॉलमी ने ग्रहों की गति को समझने के लिए जो मॉडल प्रस्तुत किया, वह **भूकेंद्री** था अर्थात् इसमें पृथ्वी को केंद्र मानकर, विभिन्न ग्रह, नक्षत्र एवं तारों को इस पृथ्वी का चक्कर लगाते हुए समझाया गया था। इसके 400 वर्ष पश्चात् 5वीं शताब्दी में भारतीय खगोलविद आर्यभट्ट ने अपने शोध में आकाशीय पिंडों की गति को समझने के लिए सर्वप्रथम **सूर्य केंद्री मॉडल** दिया, जिसके अनुसार सभी ग्रहों को सूर्य के चारों ओर गति करते हुए माना गया है। इस मॉडल के लगभग 1000 वर्ष बाद पोलैंड के एक ईसाई भिक्षु निकोलस कापरनिकस (1473–1543) ने **सूर्य केंद्री मॉडल का एक विकसित रूप** प्रस्तुत किया जिसके समर्थन में तत्कालीन खगोलविद गैलीलियो को गिरजाघर द्वारा जनआस्था के विरुद्ध होने पर मुकदमा चलाया गया। लगभग इसी काल में डेनमार्क के एक कुलीन व्यक्ति टाईको ब्रेह (1546–1601) ने अपना समस्त जीवन ग्रहों के प्रेक्षण (आंखों द्वारा) में लगाते हुए काफी विस्तृत आंकड़े एकत्रित किए। इन्हीं आंकड़ों के विश्लेषण के बाद उनके सहायक जोहांस केप्लर (1571–1640) ने ग्रहों की गति के **तीन नियम** प्रतिपादित किए, जिन्हें **केप्लर के नियम** कहा जाता है। इन्हीं उत्कृष्ट नियमों ने न्यूटन को सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण के नियम को प्रस्तावित करने के लिए प्रेरित किया।

केप्लर के नियम

केप्लर के तीनों नियमों को क्रमशः **कक्षाओं का नियम, क्षेत्रफल का नियम** तथा **आवर्तकाल का नियम** कहते हैं। कक्षाओं के नियम के अनुसार सभी ग्रह, सूर्य के परितः दीर्घवृत्तीय कक्षाओं में घूमते हैं और सूर्य इस दीर्घवृत्तीय कक्षा के किसी केंद्र में होता है। क्षेत्रफल के नियम के अनुसार सूर्य के चारों ओर गति करने वाले ग्रह समान समय में समान क्षेत्रफल पार करते हैं। अतः ग्रहों की क्षेत्रीय चाल नियत रहती है। केप्लर के तीसरे नियम के अनुसार किसी ग्रह के परिक्रमण काल का वर्ग ग्रह द्वारा अनुरेखित दीर्घवृत्त के अर्ध दीर्घवृत्त

अक्ष के घन के समानुपाती होता है।

सर आइजक न्यूटन ने पहली बार एक सिद्धांत प्रतिपादित किया जिसके अनुसार कोई भी दो वस्तुएं, जिनमें द्रव्यमान है, वे एक दूसरे को आकर्षित करती हैं। उन्होंने इसे **सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण** का नाम दिया क्योंकि यह नियम संपूर्ण ब्रह्मांड में लागू होता है। इस गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के जानने के उपरांत ही हम पृथ्वी के परिभ्रमण को ठीक से समझ पाए। ग्रहों के परितः घूमने वाले उपग्रहों की गति भी इसी सिद्धांत के द्वारा समझी जाती है। इसी गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत के परिणामस्वरूप हमने अपनी पृथ्वी के परितरू घूमने वाले सैकड़ों उपग्रहों को प्रक्षेपित किया है जिससे सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में एक बड़ी क्रांति संभव हो सकी है।

सर आइजक न्यूटन के अनुसार यदि दो द्रव्यमान m_1 एवं m_2 , एक दूसरे से r दूरी पर रखे हैं तो उनके मध्य लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल दोनों द्रव्यमान के गुणन के समानुपाती व उनके बीच दूरी के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती होता है–

$$F = Gm_1m_2/r^2$$

यहां G नियतांक है जिसे सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण नियतांक कहते हैं। इसका मान सर्वत्र एक समान यानी 6.67×10^{-11} न्यूटन मीटर^2 / किलोग्राम^2 होता है । उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि गुरुत्वाकर्षण बल उनके बीच के माध्यम व स्थान पर निर्भर नहीं करता है। न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार, पृथ्वी द्वारा किसी वस्तु पर लगने वाला गुरुत्वीय बल वस्तु में जो त्वरण उत्पन्न करता है उसे गुरुत्वीय त्वरण कहते हैं।

यदि m द्रव्यमान की वस्तु पृथ्वी तल से h ऊंचाई पर हो तब उसमें उत्पन्न गुरुत्वीय त्वरण निम्नलिखित समीकरण से निकाला जा सकता है–

$$g = GMe/(Re+h)^2$$

जहां Me पृथ्वी का द्रव्यमान है। उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि गुरुत्वीय त्वरण का मान वस्तु के द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता। इसी समीकरण से गुरुत्वीय त्वरण में होने वाले परिवर्तन को भी समझा जा सकता है। पृथ्वी के अंदर 'g' का मान गहराई बढ़ने से कम होता जाता है और अंततः केंद्र में शून्य हो जाता है।

ग्रहों के परिभ्रमण का सिद्धांत

सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार, उपग्रहों की परिभ्रमण गति के लिए आवश्यक अभिकेंद्रीय बल, गुरुत्वाकर्षण बल से ही प्राप्त होता है क्योंकि किसी भी वस्तु की वृत्तीय गति के लिए आवश्यक अभिकेंद्र बल उसमें लगने वाले गुरुत्वाकर्षण बल से प्राप्त हो जाता है। अतः उपग्रहों को किसी भी प्रकार के ईंधन की आवश्यकता नहीं होती जबकि ये लाखों करोड़ों किलोमीटर की दूरी वर्ष भर में तय करते हैं। उपग्रहों की कक्षीय चाल भी उपरोक्त शर्त से निकाली जा सकती है।

विद्युत विभव तथा विद्युत स्थितिज ऊर्जा के समतुल्य गुरुत्वीय विभव एवं गुरुत्वीय स्थितिज ऊर्जा को समझा जा सकता है। यहां आवेश के स्थान पर द्रव्यमान को लेना होता है। किसी द्रव्यमान M के द्वारा 'r' दूरी पर उत्पन गुरुत्वीय विभव का मान एक प्रायोगिक द्रव्यमान को अनंत से उस बिंदु तक लाने में प्राप्त हुए कार्य प्रति इकाई प्रायोगिक द्रव्यमान द्वारा ज्ञात किया जाता है जबकि गुरुत्वीय ऊर्जा प्राप्त हुए संपूर्ण कार्य के बराबर

होती है।

गुरुत्वीय पलायन वेग

गुरुत्वीय क्षेत्र में किसी वस्तु को दिए जाने वाला वह न्यूनतम वेग जिससे कि वह पुनः पृथ्वी पर वापस ना आ सके अर्थात् पृथ्वी के गुरुत्वीय क्षेत्र से बाहर चला जाए, गुरुत्वीय पलायन वेग कहलाता है। इस स्थिति में गुरुत्वीय पलायन वेग के कारण वस्तु द्वारा अर्जित गतिज ऊर्जा, उसकी स्थितिज ऊर्जा के बराबर हो जाती है जिससे उसकी कुल स्थितिज ऊर्जा शून्य हो जाती है क्योंकि किसी भी आकर्षण बल की उपस्थिति में स्थितिज उर्जा शून्य होने का तात्पर्य है कि वस्तु बल क्षेत्र से बाहर चली गई है। अतः यदि किसी द्रव्यमान m का पलायन वेग पृथ्वी सतह है तो–

$^{1/2}mve^2 = Gmem/r^2$

$v_e = (2GMe/r)^{1/2}$

उपरोक्त समीकरण से स्पष्ट है कि पलायन वेग का मान पलायन की जाने वाली वस्तु के द्रव्यमान पर निर्भर नहीं करता है।

(25)
रंग यानी प्रकाशिक परिघटनाएं

राम शरण दास
49 वैशाली, सेक्टर–4
वैशाली, गाजियाबाद–201012
email: rsgupta_248@yahoo.co.in

रंग बिरंगे फूल, पत्तियाँ, आकाश में इन्द्रधनुष हमें अच्छे लगते हैं। तो क्या रंग किसी वस्तु का मूल गुण है? ऐसा नहीं है। विज्ञान कहता है कि रंग वस्तुओं में नहीं होते हैं, बल्कि प्रकाश में होते हैं। पदार्थ तो सिर्फ प्रकाश के इन रंगों को परावर्तित, अवशोषित या संचरित करते हैं। यही नहीं, रंगों को लेकर एक अजूबा नेत्रों में भी है। नेत्रों में व्यवस्था सिर्फ तीन रंगों– लाल, नीला, हरा और उनकी तीव्रता के प्रभावों के संवेदन की है। लेकिन इसी व्यवस्था से अनेकानेक रंगों की छटा प्रकृति में दिखाई पड़ती है। रंगों के इस विज्ञान पर अभी भी शोध हो रहा है। लेकिन अभी तक की समझ के आधार पर रंगीन फोटोग्राफी और रंगीन टेलिविजन जैसी प्रौद्योगिकियां संभव हुई हैं।

रंगों के रहस्य का पहला भेद न्यूटन ने खोला जब अपने प्रयोगों द्वारा उन्होंने यह सिद्ध किया कि सामान्य श्वेत प्रकाश सात रंगों के प्रकाश का संयोजन है और प्रिज्म से गुजरने पर अपने अवयवी रंगों में विभाजित होकर एक सतरंगी पैटर्न के रूप में प्राप्त होता है। फिर धीरे–धीरे यह समझ में आया कि अन्य प्रक्रम भी हैं जो प्रकाश

को उसके अवयवी रंगों में विभाजित कर रंगों से जुड़ी अनेक प्राकृतिक परिघटनाओं को जन्म देते हैं। इनमें शामिल हैं व्यतिकरण – जिसके कारण साबुन के बुलबुलों में गड्डगड्ड होते रंग नजर आते हैं, विवर्तन जो ग्रेटिंग के द्वारा स्पेक्ट्रम प्राप्त करने में मदद करता है और प्रकीर्णन जो आकाश को नीला रंग प्रदान करता है। इस प्रस्तुति में ध्रुव ज्योतियों समेत विविध प्रकाशिक परिघटनाओं की व्याख्या की गई है।

(26)

हमारा ब्रह्मांड

देवेन्द्र मेवाड़ी

सी– 22, शिव भोले अपार्टमेंट्स

प्लाट नं.20, सैक्टर–7, द्वारका फेज–1, नई दिल्ली– 110075

फोनः 9818346064

E-mail: dmewari@yahoo-com

कहा जाता है, ब्रह्मांड अनंत है। उसके ओर–छोर का कोई पता नहीं है। हमारा विशाल सौरमंडल ब्रह्मांड की एक छोटी–सी मंदाकिनी 'आकाशगंगा' में स्थित है। हमारे सौरमंडल की तरह आकाशगंगा में लाखों सौरमंडल हैं। वैज्ञानिक कहते हैं, ब्रह्मांड में ऐसी लाखों–लाख मंदाकिनियां हैं। उनमें अरबों– खरबों तारे हैं।

हमारी मंदाकिनी उभरी तश्तरी की तरह है। उसके बीच का व्यास1,00,000 प्रकाशवर्ष है। मतलब आकाशगंगा के बीच के हिस्से में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में प्रकाश को एक लाख वर्ष लगेंगे। हमारा सूर्य आकाशगंगा के केन्द्र से एक किनारे की ओर करीब 30,000 प्रकाशवर्ष दूर है। वैज्ञानिकों ने पता लगाया है कि आकाशगंगा के बीच में एक विशाल ब्लैक होल है और, यह भी कि आकाशगंगा के केन्द्र से हमारी पृथ्वी 27,000 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है।

अब, जरा तारों की दूरी देखें। हमारी पृथ्वी के सबसे नजदीक जो तारा है, उसका नाम है– प्रोक्सिमा सेंटोरी। वह पृथ्वी से 4.3 प्रकाशवर्ष दूर हैं। तुमने ध्रुवतारा तो देखा ही होगा। वह हमसे 472 प्रकाशवर्ष दूर है। और, आसमान में सबसे तेज चमकने वाला तारा यानी व्याध या सिरिअस पृथ्वी से करीब 9 प्रकाश वर्ष दूर है। आसमान में टिमटिमाते वे तारे हमारे सूर्य से भी विशाल हैं। ध्रुव तारे का व्यास हमारे सूर्य से 120गुना अधिक है। व्याध तारा हमारे सूर्य से दोगुना बड़ा है। और हां, हमारी पृथ्वी से सबसे नजदीक देवयानी अर्थात् एंड्रोमीडा मंदाकिनी है। वह पृथ्वी से करीब 20 लाख प्रकाशवर्ष दूर है।

मोटे अनुमान के अनुसार अनंत अंतरिक्ष में 100 अरब से भी अधिक मंदाकिनियां हैं। उन मंदाकिनियों में से हरेक में औसतन 100 अरब तारे हैं। सोचो जरा, अरबों– खरबों मंदाकिनियां कहां तक फैली होंगी? कहां–कहां तक वे खरबों सूर्य चमकते होंगे? उन खरबों सूर्यों के सौरमंडलों में क्या कहीं हमारी तरह सोचने–विचारने वाले जीव यानी 'एलियन' होंगे? कौन जाने! हमारे वैज्ञानिक काफी समय से पता लगाने की कोशिश कर रहे

हैं कि क्या वहां कहीं 'एलियन' हैं। उन्होंने उनके लिए संदेश भी भेजे हैं यानी, पृथ्वी से सुदूर अंतरिक्ष में हम अनाम, अनजान जीवों से हम पूछ रहे हैं– हैलो, कोई है?

अब तक कोई उत्तर नहीं मिला है। अगर वहां कहीं कोई है तो हो सकता है वे भी हमारा पता लगा रहे हों। लेकिन, एलियनों का जवाब मिलने में भी तो कई प्रकाशवर्ष का समय लगेगा। हमारी न जाने कितनी पीढ़ियां बीत चुकी होंगी। फिर भी क्या पता, कभी एलियनों से हम मानवों की भेंट हो ही जाए।

पृथ्वी, सूर्य, सौरमंडल, आकाशगंगा और अरबों मंदाकिनियां। उनमें खरबों तारे और उसके बाद? यही है हमारा विशाल ब्रह्मांड। कोई नहीं जानता की ब्रह्मांड की सीमा कहां तक है। ब्रह्मांड कितना बड़ा है। हम केवल कल्पना की उड़ान भर सकते हैं।

(27)

पियानो की अभिगृहीतियाँ

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

विज्ञान परिषद् प्रयाग

महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002

मो. 9450496257

महान गणितज्ञ कार्ल फ्रेडरिक गाउस (1777–1855 ई.) की उक्ति है– 'विज्ञान की रानी गणित है, और गणित की रानी अंकगणित है।' अंकगणित के सौन्दर्य पर मुग्ध प्रसिद्ध गणितज्ञ लियोपोल्ड क्रोनेखर ने कहा– 'पूर्णांकों का सृजन ईश्वर ने किया है। शेष सब आदमी ने खोजा है।'

जब पूर्णांकों की बात चलती है तब संख्या सिद्धान्त के विस्तृत एवं जटिल आकाश के इस आधारभूत समुच्चय के विषय में कुछ प्रश्न उठते हैं– प्राकृतिक संख्याएँ क्या हैं?, धनपूर्णांकों का योग साहचर्य और क्रम–विनिमेय के नियमों का पालन क्यों करता है? आदि।

इन सभी और ऐसे अनेक प्रश्नों के उत्तर देने के उद्देश्य से इटली के प्रसिद्ध गणितज्ञ जी. पियानो (1858–1932 ई.) ने, प्राकृतिक संख्याओं के विकास के संबंध में एक अभिगृहीती दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। पियानो ने पांच अभिगृहीत लिए जो इस प्रकार हैं–

$A_1.\ 1 \in N$

$A_2.\ \forall n \in N\ \exists$ अद्वितीय $n^+ \in N$

$A_3.\ \forall n \in N,\ n^+ \neq 1$

$A_4.\ m^+ = n^+ \Rightarrow m = n;\ n \in N$

A_5. यदि N का कोई उपसमुच्चय M इस प्रकार है कि–

(i) $1 \in M$

(ii) तो $M = N$

इन अभिगृहीतों के आधार पर उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर सहजता से मिल गये।

उपरोक्त पांचवीं अभिगृहीत (A_5) को पियानो की आगमन अभिगृहीत (Axiom of Induction) कहते हैं। इसी पांचवीं अभिगृहीत से गणितीय आगमन का सिद्धान्त (Principle of Mathematical Induction) विकसित होता है।

गणितीय आगमन का सिद्धान्त– प्राकृतिक संख्या n के लिए स्थापित कोई कथन P(n) सभी प्राकृतिक संख्याओं के लिए सत्य होगा यदि–

(i) कथन $n = 1$ के लिए सत्य है।

(ii) कथन $n = r$ के लिए सत्य है तो वह $n = r^+$ के लिए सत्य है।

जहाँ पियानो की अभिगृहीतियों के आधार पर प्राकृतिक संख्याओं के विस्तार, उनकी योग आदि संक्रियाओं और नियमों को स्पष्ट किया जाता है, वहीं 'गणितीय आगमन का सिद्धान्त' प्राकृतिक संख्याओं पर आधारित अनेक जटिल कथनों की सत्यता सिद्ध करने में सहायक है और यह प्रमाण अकाट्य होता है। गणितीय आगमन द्वारा प्रमाणित किये जा सकने वाले कुछ कथन–

$11^{n+2} + 12^{2n+1}$ जहाँ , 133 से विभाज्य है; व्यंजक $x(x^{n-1} - n.a^{n-1}) + a^n(n-1), n>1, n \in N$ सदैव $(x-a)^2$ से विभाज्य है;

$p \in N$ $(\cos\theta + i\sin\theta)^n = \cos n\theta + i\sin n\theta, \forall n \in N;$

$$\sum_{1}^{n} ar^{n-1} = \frac{a(r^n - 1)}{r - 1}, r > 1; \quad \frac{2n!}{2^{2n}(n!)^2} \leq \frac{1}{(3n+1)^{1/2}}, \forall n \in N$$ आदि।

इस प्रकार प्राकृतिक संख्याओं और उनके नियमों की स्थापना एवं उन्हें सिद्ध करने के लिए पियानो की अभिगृहीतियाँ गणितीय आधार हैं। साथ ही धनपूर्णांकों पर आधारित किसी भी कथन की अकाट्य प्रामाणिकता के लिए गणितीय आगमन के सिद्धान्त का आश्रय लेते हैं।